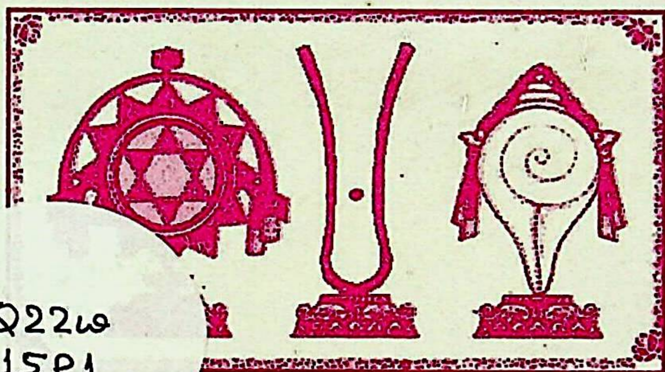
।। श्रीश्रीराधावृन्दावनबिहारी जयति ।।
।। भगवते श्रीनिम्बार्काचार्याय नमः ।।

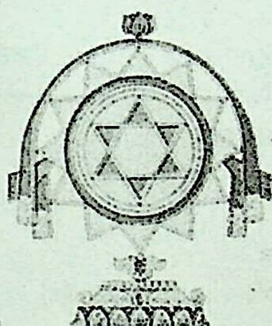
श्रीपुरुषोत्तमोपासना



रचयिता
डॉ. स्वामी द्वारकादासजी काठियाबाबा

।। श्रीश्रीराधावृन्दावनबिहारी जयति।।
।। भगवते श्रीनिम्बार्काचार्याय नमः।।

श्रीपुरुषोत्तमोपासना





रचयिता

डॉ. स्वामी द्वारकादासजी काठियाबाबा

✤ प्रकाशक :
ब्रह्मचारी म. श्रीयुगलशरणजी महाराज "आयुर्वेदमर्मज्ञ"
श्री पाट नारायण मन्दिर
पो॰ गिरिवर (वाया आबूरोड)
जिला : सिरोही (राजस्थान)

✤ संस्करण :
प्रथम, श्रीनिम्बार्क-जयन्ती
(कार्तिकी पूर्णिमा वि॰ सं॰ २०५८)
दिनांक ३०-११-२००१

✤ मूल्य :
रु॰ ५०/- (पचास रुपये मात्र)
✤ पुस्तक प्राप्ति-स्थान :
१- चौखम्बा संस्कृत-प्रतिष्ठान
३८, यू॰ ए॰ बँगलो रोड, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स नं॰ २११३, दिल्ली-११०००७
२- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन
के॰ ३७/११७ गोपाल मन्दिर लेन
पोस्ट बॉक्स नं॰ ११२९, वाराणसी-२२१००१ (उ॰ प्र॰)
३- प्रमुख वितरक
चौखम्बा-विद्याभवन
चौक (बनारस स्टैट बैंक-भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स नं॰ १०६९, वाराणसी-२२१००१ (उ॰प्र॰)
४- खण्डेलवाल एण्ड संस
अठखम्भा बाजार, पो॰ वृन्दावन-२८११२१ जि॰ मथुरा (उ॰ प्र॰)
✤ मुद्रक :
खेतान कम्प्यूटर ग्राफिक्स
पत्थरपुरा, वृन्दावन
☎ : (0565) 444972

विषयानुक्रमणिका

Introduction

This is a sincere endavour to throw light upon 'Importance of Chanting Lord's name'. In order to creat interest in spiritual practices, Lord's daily routine has been incarporated, So that people will not disregard religious activities. Meditating on Lord's figure that too on Lord's two handed idol in couple form. Radha & Krishna as a couple, from scientific angle and related words & their meanings have been contemplated. Radha is enmating power of supreme power Lord krishna and Lord's charishma is discussed Unbreakable Union, between Radha & Krishna is enplained by example. Besides it contains Radha & Krishna features Radha features means for God realisation, Urdhwapundra (Sign) application method, Shaligram-worshiping-features, translation and defination of (1) Morning prayer by Nimbarkacharya, Srutyukta Srikrishna stotra & Bramha Govind stotra.

The author Dr. Swami Dwarka Dass Kathiababa is the disciple of my elder gurubrother late shrimat Radha behari dasji, Kathiababa formerly Mahanta of Sukchar, 24 Parganas, West Bengal. I wish the book will enthuse all those aspirants who want elevate themselves spirially and in attaining the goal supreme.

By : Debasis Bagchi
Inspactor General of Police (Enforcement)
Delhi Vidyut Board

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णम् : एक विहंगम् दृष्टि

डॉ० स्वामी द्वारकादास काठियाबाबा द्वारा लिखित **"कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णम्"** श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के अध्याय पाँच के श्लोक ३२ पर "एक पूज्य विचार" पढ़ने का शुभ अवसर मिला। उक्त श्लोक के उपक्रम पर विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि कलियुग में कृष्णवर्ण भगवान् श्रीकृष्ण (जो कान्ति से अकृष्ण हैं) की उपासना करनी चाहिए।

सत्ययुग में शुक्लवर्ण, त्रेता में रक्तवर्ण, द्वापर में पीतवर्ण, कलि में कृष्णवर्ण वाले भगवान् श्रीकृष्ण, जो कान्ति से अकृष्ण हैं की अर्चना, उपासना करनी चाहिए।

यहाँ इतना और समझना बहुत आवश्यक है कि अन्य युगों में केवल शुल्क-रक्त-पीतवर्ण भगवान् की आराधना बताई है, इसी क्रम से कलियुग में भी कृष्णवर्ण भगवान् की पूजा न बताकर कान्ति से अकृष्ण श्रीकृष्ण की उपासना बताई है। इसका स्वारस्य यह है कि अकृष्ण-कान्ति-शालिनी गौणवर्णा आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा-सम्बलित श्रीकृष्ण की उपासना करनी चाहिए।

इसीलिए तो भगवान् श्रीशंकर ने देवी पार्वती को इत्थंभूत निर्णय दिया कि कलियुग में गौरतेज (श्रीराधा) के बिना केवल श्याम तेज (श्रीकृष्ण) की उपासना नहीं करनी चाहिए। यथा-

गौरतेजो बिना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत् ।
जपेद् वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी शिवे ॥

कारण यह है कि आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा के बिना श्रीकृष्ण पूर्ण नहीं हो सकते। तत्त्व की पूर्णता के लिए शक्ति की सुतरां अपेक्षा होती है। यथा–

राधां कृष्णस्वरूपां वै कृष्णं राधास्वरूपिणम् ।
कलात्मानं निकुञ्जस्थं गुरुरूपं सदा भजे ॥

रसोपासना-जगत् के सूर्य रसिक-शिरोमणि, रसिक-राज-राजेश्वर श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी ने आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा और वृन्दावननित्य-निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण को अभिन्नरूप में देखा है। राधा कृष्णस्वरूपा हैं, तो कृष्ण राधा-स्वरूप हैं। नित्य- निकुञ्ज में विराजमान श्रीयुगलतत्त्व ही सेवनीय हैं व भजनीय हैं।

इससे सिद्ध होता है कि श्रीमद्भागवतकार श्रीव्यास जी ने कृष्णवर्ण-श्रीकृष्ण में कान्ति से अकृष्णता देखी ! तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण में जो अकृष्ण-कान्ति (गौरवर्ण) चमत्कृत हो रही है, वह आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाा ही हैं। जैसे जलद में सौदामिनी चमकती है, वैसे ही श्रीकृष्ण में गौरतेज चमकता है, तो श्रीराधा में श्यामतेज उद्वेलित होता है।

एतावता सिद्ध होता है कि गौरतेजः सम्मिलित श्रीकृष्ण और श्यामतेजः सम्मिलित श्रीराधा ही श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के उपास्य तत्व हैं। यही भागवतकार का इष्ट है। अतः श्रीनिम्बार्काचार्यजी ने उपासना की वैदिक-परम्परा बताते हुए "वेदान्त-दशश्लोकी" में कहा है–

उपासनीयं नितरां जनैः सदा
प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं
श्रीनारदायाऽखिलतत्त्वसाक्षिणे ॥

अज्ञान रूपी अन्धकार की पुनरावृत्ति रोकने के लिए गंगाजल प्रवाहवत् निरन्तर युगलतत्त्व-श्रीराधाकृष्ण की उपासना करनी होगी। इस युगलोपासना की परंपरा सनकादिकों से श्रीनारदजी को प्राप्त हुई और श्रीनारद से आचार्य श्रीनिम्बार्क को प्राप्त हुई।

यद्यपि श्रीमद्भागवत में स्पष्टरूप से आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा का नाम तो नहीं लिया गया है तथापि कई जगह उनका संकेत अवश्य किया गया है। यथा–**"निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा"** यहाँ 'राधस्' शब्द से उन्हीं का संकेत किया है। कहीं **"राधावन्तो भटान् मृधे"** (अष्टमस्कन्ध) में राधावन्तः में आधावन्तः है, तथापि पदपाठ में राधावन्तः ही कहा जाएगा। इसी प्रकार दशमस्कन्ध की रासपञ्चाध्यायी में करीब स्पष्ट ही है– **"अनया राधितो नूनम्।"**

इन्हीं आधारों पर स्वामी द्वारकादासजी काठिया बाबा ने **"कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णम्"** इत्यादि पदों में शास्त्रों के प्रमाणों के द्वारा प्रमाणित करके 'अकृष्ण' शब्द से गौरवर्ण अर्थात् गौरतेज (राधा) को लिया है।

यह अपने-आप में एक महत्त्वपूर्ण अन्वेषण है। इसीलिए इन्होंने किशोरीजी के ध्यान में लिखा है–नवीनां हेमगौरांगीम्.... ....इत्यादि। एक ही कृष्ण में नीलिमा और श्वेतिमा का दर्शन जो हो रहा है, वह आह्लादिनी शक्ति की चमत्कृति ही है।

आपने **"कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णम्"** इस श्रीमद्भागवत के प्रतीक को आधार बनाकर कृष्णतत्त्व तथा राधातत्व के सम्बन्ध में जो चिन्तन किया है, वह देखते ही बनता है। पद-पदार्थ-पूर्वक शास्त्रीय व्युत्पत्ति करते हुए सप्रमाण जो युगलतत्त्व का निरूपण किया है, सम्भव है कि वह राष्ट्रभाषा में कहीं

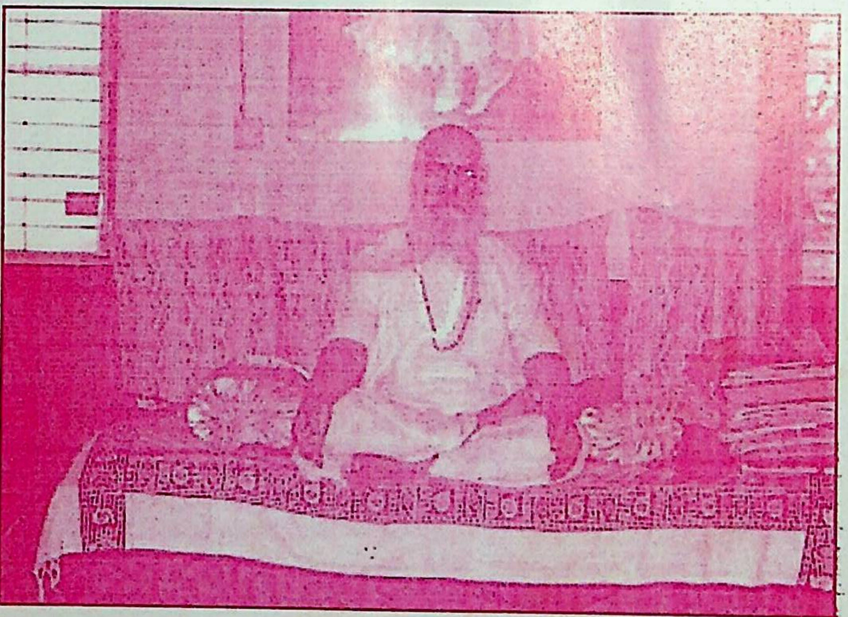
देखने को नहीं मिलेगा। प्रातःस्तव, गोविन्दस्तोत्र, राधोपनिषद् की व्याख्या, भगवान् श्रीपुरुषोत्तम का स्वरूप, भगवान् श्रीपुरुषोत्तम का प्रभाव, तन्नाम माहात्म्य, भगवद्दिनचर्या आदि शीर्षकों के माध्यम से भक्तों को, जिज्ञासुओं को महत्त्वपूर्ण तत्त्वज्ञान कराये जाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम व आप्तकाम हैं; उन्हें किसी से किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं है और न ही उनको कुछ कर्म करने की आवश्यकता है तथापि लोक-कल्याण के लिए भगवान् ने दिनचर्या का पालन किया। इससे जाहिर होता है कि मानवमात्र को कर्म की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अपनी दिनचर्या से भगवान् ने लोकोपकार ही किया है।

राधामाहात्म्य-प्रकरण अत्यन्त मननीय है। 'भगवत्प्राप्ति के साधन' नामक शीर्षक में भगवत्प्राप्ति-हेतु जो व्याकुलता का स्वरूप दर्शाया गया है, वास्तव में वह भगवत्-प्राप्ति का अमोघ साधन है। भगवान् की दयालुता, कारूण्य तथा भक्तवत्सलता ये सब भगवान् के रूप में ही प्रकट होते हैं। शरणागत भक्तों की भावना भगवान् को आत्मसात् करती है।

इसी प्रसंग में शरणागति के महत्त्व को भी दिखाया गया है। शरणागति के छः अंग हैं–

1. **अनुकूल कर्म का संकल्प**
2. **प्रतिकूल कर्म का वर्जन**
3. **भगवत्-शरण्यता पर विश्वास**
4. **गोप्तृत्व-वरण**
5. **आत्म-समर्पण**
6. **दीनता**



ब्रह्मचारी म. श्रीयुगलशरणजी महाराज "आयुर्वेदमर्मज्ञ"

वस्तुतः इस सांग शरणागति के आधार पर ही भगवत्-शरणागति होनी चाहिए। एतदर्थ सर्वप्रथम गुरु के पास जाना होगा, उनके बताए मार्ग पर चलना होगा; तब शरणागति पुष्ट होगी।

शरणागति के प्रसंग में वैष्णव-चिह्न धारण-विधि का भी उल्लेख है। वैष्णव तो समस्त जगत् को किंवा समस्त भुवन को पवित्र करते हैं। यथा–

कुलं पवित्रं जननीं कृतार्थां
वसुन्धरा भाग्यवती च धन्या ।
स्वर्गे स्थितास्तत्पितरोऽपि धन्याः
येषां कुले वैष्णवनामधेयः ॥

जिस कुल का व्यक्ति कदाचित् वैष्णव हो जाता है, तो वह कुल ही पवित्र हो जाता है। जन्म देने वाली माता कृतार्थ होती है, उसके स्वर्ग-स्थित पितर भी धन्य-धन्य होते हैं और वसुन्धरा भी सौभाग्य-शालिनी कहलाती है।

इस पुस्तक में शालग्राम-पूजन का महत्त्व भी दिखाया गया है। शालग्राम में भगवान् की अलौकिक विशेषता है। उनमें स्वतः देवत्व है। उनमें युगलस्वरूप श्रीराधाकृष्ण सदा विराजमान रहते हैं। विश्व का कौन ऐसा मन्दिर होगा, जहाँ शालग्राम की पूजा न होती हो? उनकी पूजा के सम्बन्ध में कहा गया है–

दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव वा ।
अर्चितं जगदिदं तेन सर्वं चराचरम् ॥

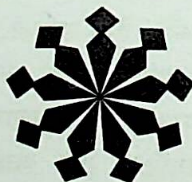
जो कोई साधक पुरुषसूक्त पढ़ते हुए भगवान् शालग्राम पर पुष्प-जल समर्पित करता है, उसने पूरे ब्रह्माण्ड की समर्चना की। मन्दिरों की पूर्णता तभी हो सकती है, जब उनमें शालग्राम (भगवान् श्रीसर्वेश्वर) विराजमान हों।

सारांश यह है कि स्वामी द्वारकादासजी काठियाबाबा ने इस लघुकाय ग्रन्थ में साधकों-विद्वानों के लिए अपेक्षित साधना से लेकर उपासना तक सांगोपांग विषयों का प्रतिपादन किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक से श्रद्धालुजन बहुत लाभान्वित होंगे।

"कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णम्" की अन्वयार्थ-व्याख्या से द्वारकादास जी की प्रतिभा मुखरित हुई है, क्योंकि इसमें उनका भाव साकार रूप में प्रकट हुआ दृग्गोचर होता है।

श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय
श्रीधाम वृन्दावन
दिनांक : वैशाख शुक्ल ३
वि०सं० २०५८

- प्रा० हरिशरण उपाध्याय
(सेवानिवृत्त)
आदर्शगाविस, गैंडाकोट-२
श्रीश्रीराधाकृष्ण मन्दिर
नवलपरासी, लु०अ० (नेपाल)



सम्पादकीय........

वेदों में आत्मतत्त्व के पुरुषरूप में दर्शन होते हैं।[1] उपनिषदों ने इस पुंविध ब्रह्म का सविस्तार वर्णन करते हुए आनन्द को ही ब्रह्म कहा है।[2] यह पुंविध ब्रह्म ही नारायण, विष्णु आदि रूपों में प्रतिष्ठित है; परन्तु श्रीपुरुषोत्तम कृष्णस्वरूप में वह परमदेव है।[3] ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में ब्रह्म के मिथुनरूप का वर्णन मिलता है; जो आगे चलकर उपनिषदों व पुराणों में प्रकट हुआ और वहाँ उक्त मिथुनतत्त्व को युगलश्रीराधाकृष्णतत्त्व के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

सामरहस्योपनिषद् में कहा गया है कि 'स्वरमण' के निमित्त ही उस पुंपुरुष ने निजरूप प्रकटित किया है। उसके स्वयं के आराधन में तत्पर होने के कारण ही उसे 'राधा' नाम से सम्बोधित किया जाता है। यथा–

'स वा अयं पुरुषः स्वरमणार्थ स्वस्वरूपं प्रकटितवान् तद्रूपं रससंवलितमानन्द रसो यं पुराविदो वदन्ति। सर्वे आनन्द रसाः यस्मात्प्रकटिता भवन्ति......स या अयं पुरुषः स्वयमेव समाराधन

---

१. पुरुषसूक्त, ऋग्वेद १०/९०/०१

२. 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्'–तैत्तरीयो. भृगुवल्ली, ६/१

३. 'श्रीकृष्ण एव परमोदेवः'–गोपालतापनीयोप.

तत्परोऽभूत् तस्मात्स्वयमेव समाराधनमकरोत् अतो लोके-वेदे च 'राधा' गीयते।'[१]

पूर्ण पुरुषोत्तम[२] कृष्ण की आत्मा राधिका है–'आत्मातु राधिका तस्य।' राधा के साथ नित्यरमण करने के कारण कृष्ण आत्माराम कहलाते हैं। राधाकृष्ण-तत्त्व की इसी मार्मिकता को रसमर्मज्ञ स्वीकार करते हैं–

आत्मा तु राधिकातस्य तयैव रमणादसौ।
आत्मारामतया-वित्र प्रोच्यतेमूढ वेदभिः॥[३]

एक रूप में जहाँ राधा कृष्णकी आराधिका हैं, तो दूसरे रूप में वे उनकी आराध्या भी हैं। राधा को कृष्ण की आह्लादिनीशक्ति कहा गया है। वस्तुतः शक्ति और शक्तिमान् में नितान्त अभेद रहता है। अपने-आपको ही अपना आस्वादन कराने के लिए स्वयं रसस्वरूप कृष्ण (जिन्हें वेदोपनिषद् 'रसो वै सः' के नाम से अभिहित करते हैं) ही 'राधा' बन जाते हैं।[४] ब्रह्माण्ड-पुराण में कहा गया है कि 'जो कृष्ण हैं, वही राधा हैं और जो राधा हैं, वही कृष्ण हैं। तत्त्वतः राधामाधव के रूप में एक ही ज्योति दो प्रकार से प्रकट है'–

यः कृष्णः सापि राधा च या राधा कृष्ण एव सः।
एकं ज्योतिर्द्विधा मिन्नं राधामाधव रूपकम्॥[५]

---

१. सामरहस्योपनिषद्
२. 'एतेचांश कलाः पुंसः कृष्णस्तुभगवान् स्वयं' –श्रीमद्भागवत
३. स्कन्दपुराण, वैष्णव-खण्ड १/२२
४. 'रसो वै सः.........................तैत्तरीयोपनिषद्......
५. ब्रह्माण्डपुराण १८/७

पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण स्वयं राधिका के प्रति कहते हैं–'जो तुम हो, वही मैं हूँ, हम युगल में किञ्चित् भी भेद नहीं है। जैसे क्षीर (दुग्ध) में धवलता, वह्नि में दाहिकाशक्ति और धरित्री में गन्ध है, यथावत् मैं अहर्निश निरन्तर तुम में विद्यमान् हूँ।' यथा–

यथा त्वं च तथाहं च भेदो हि नावयोर्ध्रुवम्।
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहिकाशक्ति।
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहंत्वयि सततम्।।[१]

उक्त प्रसंग में ही पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि 'जो नराधम हम युगल में भेदबुद्धि रखता है, वह सूर्यचन्द्र की स्थितिकाल तक कालसूत्र नामक नरक में वास करता है।' यथा–

आवयोर्भेदबुद्धिं च या करोति नराधमः।
तस्य वासः कालसूत्रे यावच्चन्द्र दिवाकरौ।।[२]

सामवेद-रहस्य में वर्णित है कि उस पुंपुरुष ने स्वरमणार्थ ही स्वस्वरूप को प्रकटित किया है। वह परमपुरुष अनादि, अनन्त और एक होकर भी युगलस्वरूप में अवतीर्ण हो सर्वरसों (विशेषतः शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर) को धारण करता है। श्रीमद्भागवत में भी देखा जाता है कि 'कृष्णवर्णं- त्विषाऽकृष्णम्' अर्थात् भगवान् श्यामसुन्दर कृष्णवर्ण हैं, राधा की छटा से वे कान्तियुक्त होकर शोभायमान हो रहे हैं। हमारे हिन्दी-जगत् के सुप्रसिद्ध कवि बिहारीलाल जी भी यही कहते हैं :–

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परै, श्याम हरित दुति होय।।

---

१. ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्म-खण्ड ६/२१४
२. वही, श्रीकृष्णजन्म-खण्ड............

नित्यविहाररसोपासकों की मान्यता है कि श्रीश्रीराधाकृष्ण ही श्रुतिप्रतिपाद्य एकरसरूप (रसो वै स:) होकर भी रसिकों के निमित्त उभयरूप धारण कर दिव्य-क्रीड़ारत हो जाते हैं। जिस प्रकार छाया से देह शोभित होती है, उसी प्रकार राधा से कृष्ण सदा शोभायमान रहते हैं–

येयं राधा यश्चकृष्णो रसाब्धि-
देहश्चैक: क्रीडनार्थं द्विधाभूत्।
देहो यथा छायया शोभमान:
शृण्वन् पठन् तद्धाम याति शुद्धम्।।[१]

सम्मोहन-तन्त्रान्तर्गत 'गोपाल-सहस्रनाम' में वर्णित है कि एक ही ज्योति दो रूपों (राधामाधव) में प्रकट हैं। इनमें जो भेदबुद्धि रखता है; वह सुरापायी, ब्रह्महन, सुवर्णचौर व श्वपच के सदृश है–

स ब्रह्महा सुरापी च स्वर्णस्तेयी च पंचमा:।
एतैर्दोषैर्विलिप्येति तेजो भेदान्महेश्वरी।
तस्माज्ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधवरूपकम्।।[२]

नारदीय पुराण में राधा को कृष्ण की प्राणाधिका व प्रियतमा कहा गया है तथा उनके नित्यनवायमान स्वरूप को दुग्ध -धावल्य व पृथ्वी-गंध की भाँति अभेदयुक्त कहा गया है–

प्राणाधिका प्रियतमा सा राधा राधितो मया।
तयोर्देहस्ययोनैर्व भेदोनित्य स्वरूपयो:।
धावल्यदुग्धयोर्यद्वत् पृथिवीगन्धयोरिव।।

वस्तुत: महाकाश का घटाकाश के साथ जो सम्बन्ध है,

---

१. श्रीराधातपनीयोपनिषद् १२
२. श्रीगोपालसहस्रनाम, १८, १९

वही सम्बन्ध श्रीकृष्ण का श्रीराधा के साथ है। केवल उपाधिभेद से दोनों में पृथकत्व है, अन्यथा वे अपृथक् सिद्ध हैं। ब्रह्माण्डपुराण के 'राधास्तव' में राधा और कृष्ण को एक प्राण, एक आत्मा स्वीकार किया गया है—'राधाकृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मकं ध्रुवम्।'

'राधोपनिषद्' में वर्णित है कि भगवान् श्रीपुरुषोत्तम कृष्ण ही परमदेव हैं। वे षड्-गुणों (ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, श्री, वैराग्य तथा धर्म) से परिपूर्ण भगवान् व श्रीवृन्दावन के अधीश्वर हैं। वे प्रकृति से भी पुरातन व नित्य हैं।

आह्लादिनी, सन्धिनी, ज्ञान, इच्छा व क्रिया आदि उनकी बहुत सी शक्तियाँ हैं। इन सर्व प्रधानशक्तियों में उनकी आह्लादिनी शक्ति राधा सर्वप्रधान हैं। पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण एक होते हुए भी क्रीड़ार्थ उभय रूप धारण कर लेते हैं। कृष्ण जहाँ सर्वेश्वरेश्वर हैं, राधा वहाँ सर्वेश्वरेश्वरी हैं। इतना हीं नहीं वे उनके प्राणों की साक्षात् अधिष्ठात्री देवी हैं। वेदापनिषद् इसी रूप में उनका एकान्त स्तवन करते हैं। वस्तुतः भेद में नित्य अभेद और अभेद में नित्यभेद—यही उस पुंपुरुष की अपनी विशेषता है। शक्ति और शक्तिमान् का यह वैशिष्ट्य अद्भुत व विलक्षण है—

कृष्ण शक्तिमय शक्ति राधिका,
चिन्मय एक तत्त्व भगवान्।
नित्य अनादि अनन्त अगोचर,
अमल अनामय सत्य महान्॥
ब्रह्म ब्रह्म की शक्ति नित्य में,
नहीं कहीं रंचक भी भेद।

जो वह वही तुम्ही हो निश्चय,
है दोनों में नित्य अभेद॥
कारण रूप जगत् की है वह,
परमोत्कृष्ट पूर्ण पर शक्ति।

– श्रीराधामाधवचिन्तन, श्रीभाईजी, पृ. ३९६

स्वाभाविक द्वैताद्वैत-दर्शन के आचार्यों और कवियों ने राधाकृष्ण के उपर्युक्त श्रुति-स्मृति-प्रमाणित स्वरूप का सांगोपांग चित्रण प्रस्तुत किया है। निम्बार्कसम्प्रदाय के आद्यप्रवर्तक जगद्गुरु निम्बार्काचार्य ने अपने प्रख्यात स्तोत्र 'वेदान्तकामधेनु' में राधा को परम प्रफुल्ल मुद्रा में कृष्ण के वामांग में विराजमान, अनुरूप-सौभगा अर्थात् कृष्ण के समान ही सौन्दर्य-माधुर्य, ऐश्वर्य-लावण्य आदि गुणों से युक्त सहस्रों सखियों से परिसेवित, भक्तों के सकल अभीष्टों को पूर्ण करने वाली कहा है:

अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा,
विराजमानामनुरूप सौभगाम्।
सखी सहस्रैः परिसेवितां सदा,
स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥

– वेदान्त-कामधेनु, श्लोक ९

पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण स्वयं परब्रह्म-परमेश्वर-रूप में विद्यमान हैं। उनकी वन्दना ब्रह्मा, शिव आदि समस्त देवता किया करते हैं। परमतत्त्व भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मादि से चिन्तनीय न होने पर भी भक्तों के वशीभूत हो, उन्हीं की इच्छानुसार चिन्तन-योग्य सुचिन्त्य युगलविग्रह धारण करते हैं। उनकी अचिन्त्य-अनन्त शक्तियाँ हैं, जिनके बल पर वे भक्तों का क्लेश दूर कर देते हैं।

वे परम उपास्यदेव हैं। उनके चरणारविन्दों को छोड़कर जीव की अन्य गति नहीं है–

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्,
संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवंदितात्।
भक्तेच्छयोपात्त सुचिन्त्य विग्रहाद-
चिन्त्य शक्तेरविचिन्त्य साशयात्।

– वेदान्तकामधेनु, श्लोक ८

वैदिक वैष्णव-धर्म व दर्शन के चारों सम्प्रदायों (सनक, श्री, ब्रह्म और रुद्र) के आराध्य वासुदेव श्रीकृष्ण होने से ये सभी वैष्णव-सम्प्रदाय कहलाते हैं। सनक अथवा निम्बार्क-सम्प्रदाय में एकमात्र राधा के साथ पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की उपासना का ही प्राधान्य है। श्री अथवा रामानुज-सम्प्रदाय में पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को भगवान् विष्णु व राधा को महालक्ष्मी के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की गई है।

जगद्गुरु मध्वाचार्य-प्रवर्तित माध्व-सम्प्रदाय में भी वासुदेव कृष्ण को ही परात्परतत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। यथा–

'श्रीमन्मध्वमते हरिः परतमः सत्यं जगत् तत्त्वतो।
भेदोजीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः॥'

श्रीमध्वाचार्य की ही परम्परा के श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने भी श्रीनिम्बार्काचार्य की भाँति राधाकृष्ण को ही अपना परमाराध्य स्वीकार किया है। यथा–

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनम्।
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता॥

शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं प्रेमापुमर्थो महान्।
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

आचार्य विष्णुस्वामी ने भी अपने आराध्य के रूप में पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को ही स्वीकार किया है। उनके अनुयायी श्रीवल्लभाचार्य ने तो एकमात्र पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के बालरूप को महत्त्व देते हुए उनके मधुररसरूप का बड़ा ही मनोहारी चित्र खींचा है। यथा–

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।

–मधुराष्टक

श्रीवल्लभाचार्य के ही अनुयायी गो. विट्ठलनाथजी ने श्रीकृष्ण के साथ उनकी आह्लादिनी शक्ति राधा का नाम जोड़कर मधुरभाव–भक्ति से उनकी एकसाथ उपासना पर विशेष बल दिया है। उन्होंने श्रीराधा को स्वामिनीजी तथा श्रीकृष्ण को श्रीनाथजी के रूप में चित्रित कर अपनी रसभक्ति को एक नया आयाम दिया है। श्रीराधा से ही वे जीवमात्र की सर्वसिद्धि मानते हुए कहते हैं–

'कृपयति यदि राधा बाधिता शेष बाधा ।
किम् परमवशिष्टं पुष्टि मर्यादयोर्मे ।।'
यदि वदति च किंचित् स्मेरहंसोदित श्री-
द्विजवरमणिपङ्क्त्या मुक्तिशुक्त्या तदा किम्?'

–शृंगारमण्डन

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि राधा से ही कृष्ण की सिद्धि व शोभा है। कृष्ण यदि आनन्द स्वरूप हैं तो राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति हैं। वृन्दावन उनका विग्रह है, तो

सखी-सहचरीगण उनकी इच्छा-शक्तिरूपा हैं। रसिकराजराजेश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्य का यह कथन कितना महत्त्वपूर्ण है–

'प्रिया शक्ति आह्लादिनी, प्रिय आनन्द स्वरूप ।
तन वृन्दावन जगमगै, इच्छा सखी अनूप ।।'

– महावाणी

यह प्रसन्नता की बात है कि डॉ० स्वामी द्वारकादास काठियाबाबा ने 'श्रीपुरुषोत्तमोपासना' पर अपने स्वानुभूत गहन विचार प्रस्तुत कर वैष्णवधर्म व दर्शन के जिज्ञासुओं को एक नई दिशा व दृष्टि प्रदान की है। वर्तमान समय में इस प्रकार के ग्रंथ-लेखन की महती आवश्यकता थी, जो इस अद्वितीय ग्रन्थरत्न से पूर्ण हुई है। एतदर्थ ग्रंथकार काठियाबाबा द्वारकादास को हमारी ओर से साधुवाद !

– **डॉ. प्रेमनारायण श्रीवास्तव** डी.लिट् .
आचार्य तथा अध्यक्ष : हिन्दी-शोध-विभाग
आई. ओ. पी. शोध-केन्द्र, वृन्दावन (उ.प्र.)

'भक्तमाल कुटीर'
मोटेगणेश जी
वृन्दावन (उ.प्र.)
दि. 28.11.2001

❖ कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ❖

उपक्रमणिका

प्रथम तो मनुष्य योनिमें जन्म ही दुर्लभ है, उसपर मनुष्यका विद्वान् होना कठिन है, विद्वान्का केवल भगवद्भक्तिमें आसक्त होना और भी कठिन है और स्वयं भक्तिमें लीन रहते हुए दूसरोंको उस ओर आकृष्ट करने की क्षमता होना परम दुर्लभ है। स्वामी द्वारकादासजी काठिया बाबा की पुस्तक श्रीपुरुषोत्तमोपाना को मैंने आद्योपान्त पढ़ा, स्वामीजी विद्वान् तो हैं ही, भगवान् पर आपकी निष्ठा भी अनुकरणीय है। श्रीमद्भागवत का आपने सम्यकानुशीलन किया है। आपका शोध-प्रबन्ध (थिसिस) इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रस्तुत ग्रन्थ **"श्रीपुरुषोत्तमोपासना"** में इन्होंने जो कुछ लिखा है, उसमें शास्त्रों व शास्त्रज्ञ प्राचीन आचार्योंके प्रमाणवचन प्रस्तुत किए हैं। भारतीय परम्परा है-**गुरुत: शास्त्रत: स्वत:।** गुरु की शिक्षाके अनुसार जो भी सीखा है, उसे शास्त्रोंके प्रमाणों द्वारा पुष्ट करके अपने विचारों में व्यक्त किया जाए।

इन सम्पूर्ण अनन्त ब्रह्माण्डोंका कर्ता-धर्ता-संहर्ता एक ही है। उसे हम ईश्वर, भगवान्, नारायण, शिव, राम या कृष्ण किसी भी नाम से कहें, वस्तुत: वह केवल सत् है अर्थात् उसका ही केवल अस्तित्व है। उसका कोई नाम-रूप नहीं होता। वह अपाणिपाद भी है और सहस्राक्ष: सहस्रपात् भी, उसके नामरूपादि की कल्पना भक्त की श्रद्धा और विश्वास पर निर्भर करती है। उस निराकार को हम किस नाम या रूप से जानें, यह समस्या भी उसने स्वयं हल कर दी है। भगवान् ने गीता में कहा है-

यद् यद् विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ।।

संसारमें जो भी विभूतिमान्, समर्थ और लोककल्याणका मार्गदर्शक सत्त्व (प्राणी) हो, उसे तुम मेरा ही अंश समझो। यही हमारे अवतारवादका रहस्य है। समय-समय पर वह विभिन्न रूपोंमें अवतीर्ण होकर अपने अस्तित्वको स्वीकार करनेकी प्रेरणा देता है। उन भगवान्का जो स्वरूप लोक को जितना अधिक कल्याणका मार्ग दिखाता है, उसमें उतनी ही अधिक अंशका प्रवेश माना जाता है, इसीलिए भगवान् कृष्णको पूर्णावतार कहा जाता है-**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्** । यही वह सत् है। इसके साथ चित् (इसकी शक्ति) रहती है। इन सत् और चित्का जब अद्वय हो जाता है (ये एक हो जाते हैं) तो वह आनन्द (ब्रह्म) हो जाता है-**'आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्'**। इसलिए उन भगवान् शिव (कल्याणकारी सत्) के जिस रूपको भी हम आराध्यके रूपमें स्वीकार करें, उसके साथ उसकी शक्ति भी अवश्य रहेगी, तभी वह पूर्ण होगा। फिर उसकी हम गौरीशंकर, लक्ष्मीनारायण, सीताराम, राधाकृष्ण आदि किसी भी रूप में आराधना करें, यह हमारी श्रद्धा पर निर्भर करता है। सबका फल एक ही होता है, क्योंकि सभी रूपों में उस चित् युक्त सत् की ही आराधना होती है-

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ।। अस्तु,

प्रस्तुत पुस्तक **'श्रीपुरुषोत्तमोपासना'** में स्वामी डॉ० द्वारकादास जी काठियाबाबा ने राधाकृष्णतत्त्व की मीमांसा की है, जिसमें सर्वप्रथम भगवन्नाममहिमा का वर्णन किया है। सतयुग में

ध्यान (समाधि) से, त्रेतामें यज्ञादिसे और द्वापरमें परिचर्यासे जो फल मिलता है, वह फल कलियुगमें केवल भगवन्नामस्मरण से ही प्राप्त हो जाता है, क्योंकि कलियुगके प्राणियोंमें वह सामर्थ्य नहीं होती, जो अन्य युगों के मनुष्यों में होती है। इसके बाद भगवच्चर्या का वर्णन किया है। भगवान् की दिनचर्या कैसी थी, यह जानकर हमें अपनी दिनचर्या वैसी ही करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। फिर पुरुषोत्तम का स्वरूप बताया है, जब तक हमें आराध्यके स्वरूपका ज्ञान नहीं होगा, तब तक आराधना कैसे करेंगे? उसके बाद भगवत्प्राप्ति के साधन बताये हैं और अन्त में युग्मतत्त्वका प्रभाव बताया है। प्रसंगानुसार बीच-बीच में प्राचीन आप्त आचार्यों की रचनाएँ, अर्थसहित श्रीकृष्णस्तोत्र, नामावली आदि दिए हैं, जिनका पाठमात्र करनेसे ही पाठकों के कल्याण का साधन हो जाता है।

इस प्रकार यह ग्रन्थ जिज्ञासु पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा, ऐसी मुझे आशा है। इस रचना के लिए स्वामीजी धन्यवाद के पात्र हैं, आगे भी इस प्रकार की रचनाओं से वे लोककल्याण का मार्ग प्रशस्त करेंगे, क्योंकि अधीत विद्या का प्रचार ही उसकी उपादेयता है। स्वामीजी एक योग्य और निष्ठावान् व्यक्ति हैं, यह श्रीमद्भागवत पर उनके आकृष्ट शोध-प्रबन्ध से स्पष्ट है। मैं उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान
सारनाथ, वाराणसी-७
फाल्गुन शुक्ल पौर्णमासी

– जनार्दनशास्त्री पाण्डेय
कार्यकारी निदेशक
दुर्लभ बौद्धग्रन्थ शोध-अनुभाग
निवास, २२/३९ पंचगंगा, वाराणसी

पुरुषसूक्तम्

हरि: ॐ सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वत: स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।१।।
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।२।।
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्श्च पूरुष: ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।३।।
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष: पादोऽस्येहाभवत्पुन: ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ।।४।।
ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुष: ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुर: ।।५।।
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत: सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ।।६।।
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋच: सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।।७।।
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादत: ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावय: ।।८।।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥९॥
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमरू पादा उच्येते ॥१०॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥११॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखारदग्निरजायत ॥१२॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ अकल्पयन् ॥१३॥
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१४॥
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः. सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि
धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

॥ इति पुरुषसूक्तम् ॥

❖ नमः श्रीपुरुषोत्तमाय ❖

श्रीपुरुषोत्तमोपासना

मंगलाचरण

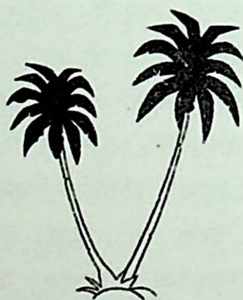
कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं[1] सांगोपांगास्त्रपार्षदम् ।
यज्ञैः संकीर्तन प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥१॥
यस्योदनं जगत्सर्वं मृत्युर्यस्योपसेचनम् ।
यस्य निश्श्वसितं वेदाः श्रीकृष्णं तन्नतोऽस्म्यहम् ॥२॥
प्रणमामि सदा राधां सर्वकामवरेश्वरीम् ।
यस्याः कृपां विना कोऽपि कृष्णं ज्ञातुं हि नार्हति ॥३॥
श्रीमद्धंसं कुमारांश्च नारदं निम्बभास्करम् ।
श्रीनिवासं सदा वन्दे गुरुं राधाविहारिणम् ॥४॥

जो कृष्णवर्ण है तथा जो कान्ति से अकृष्ण गौरवर्ण राधासम्बलित है अथवा कान्ति से कृष्णवर्ण (तमालवर्ण) उसमें अकृष्ण (गौरवर्ण) चमक रहा है अर्थात् नील मेघ के समान सुन्दर जिनका श्यामवर्ण है तथा जो कान्ति से बिजली के समान अकृष्ण (गौरतेज) शोभायमान हो रहे हैं। वे पाणि-पाद आदि अंग, कौस्तुभमणि, मकराकार कुण्डल, वनमाला आदि उपांग, सुदर्शन चक्र आदि अस्त्र, सनकादि एवं नारदादि पार्षदों से संयुक्त हैं। विवेकी पुरुष यज्ञ, दान, तप, स्वाध्याय, सत्संग इत्यादि द्वारा उन (राधाकृष्ण युग्मतत्त्व) की उपासना करते हैं;

---

(१) त्वं मे शोभा स्वरूपाऽसि देहस्य भूषणं यथा। इति श्रीमुखवचनम्।
गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत्।
जपेद् वा ध्यायते वाऽपि सभवेत्पातकी शिवे॥ इति च श्रीमहादेववचनम्॥

जिनमें प्राय: लीलाकथा, गुण-धाम, स्वरूप-माहात्म्य एवं युगल नामों का संकीर्तन हुआ करता है।।१।। जो सम्पूर्ण चराचर जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाले हैं। जिनके नि:श्वास से वेदों का प्रादुर्भाव हुआ है, उन भगवान् श्रीकृष्ण को मैं मन, वाणी और सिर से नमस्कार करता हूँ।।२।। जो समस्त कामनाओं और मनोरथों को पूर्ण करने वाली हैं, जिनकी कृपा के बिना कोई भी भगवान् कृष्ण को जान ही नहीं सकता है, उन पराशक्ति भगवती राधा को मैं सदा प्रणाम करता हूँ।।३।। श्रीहंस (नारायण) भगवान्, सनकादिक (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) भगवान्, श्रीनारद भगवान्, श्रीनिम्बार्क भगवान्, श्रीश्रीनिवासाचार्यजी और गुरुदेव स्वामी राधाबिहारीदासजी काठियाबाबा जी की मैं सदा वन्दना करता हूँ।।४।।



श्रीभगवन्नाममाहात्म्य

वस्तुतः श्रीभगवान् का न जन्म है, न कर्म है, न नाम है और न तो रूप है, इसलिए वे माया के गुण-दोषों से सर्वथा रहित हैं। वे स्वभावतः ही अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँचों दोषों से शून्य हैं।

तथापि वे अपनी माया (कृपा) से समस्त प्राणियों के परम कल्याण (मोक्ष) के लिए और विश्व-सृष्टि एवं विनष्टि के लिए समय-समय पर सुन्दर-सुन्दर अवतार धारण करते हैं।

जो उनके श्रीचरण-कमलों का भजन क़रते हैं, श्रीभगवान् उनपर अनुग्रह करने के लिए जन्म और कर्मों द्वारा नाम-रूप धारण करते हैं। इसलिए वे सत् हैं अर्थात् तीनों काल (भूत, भविष्यत्, वर्तमान) में रहते हैं। जिसका अनुभव, प्रत्यक्ष-दर्शन योगिजन समाधि में करते हैं।

श्रीभगवान् सर्वस्वरूप हैं। वे अपनी अनन्त-अचिन्त्य स्वाभाविक स्वरूप-गुण-शक्तियों से नानारूप धारणकर सम्पूर्ण चराचर विश्व में व्याप्त हैं। इसमें शास्त्र-प्रमाण हैं–एकोऽहं बहु स्याम्।[१] अजः सर्वस्वरूपो बभौ, स सर्वनामा स च विश्वरूपः।[२] एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः।[३] श्रीभगवान् कहते हैं–

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लङ्घ्य वर्तते ।
आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी नरकं प्रतिपद्यते ।।[४]

---

(१) छान्दोग्योपनिषत् (२) श्रीमद्भागवतम् १०/१३/१९, ६/४/२८
(३) श्रीमन्महाभारत अनुशासनिक पर्व (४) वराहपुराणम्

श्रुति (वेद) और स्मृति मेरी आज्ञा है, जो उनकी अवहेलना करता है, वह अवज्ञाकारी मेरा विद्वेषी है और मरने पर वह नरकगामी होता है। ब्रह्मा, महेश, इन्द्र इत्यादि देवगण जिनके श्रीचरण-कमलों में पूर्ण अनुराग के सहित विनम्र-भावसे अपने मणिमय मुकुटों का स्पर्श कराते हुए सदा वन्दना करते हैं, ऐसे त्रिभुवन-कमनीय श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण ने निज भक्तों को मृत्यु-संसार-सागर से उद्धार करने के लिए ही लोकविलक्षण दिव्यमंगल सच्चिदानन्द विग्रह धारण किया था। "तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।[1] वे अनन्त-अचिन्त्य तथा स्वभाव से ही ज्ञान, ऐश्वर्य, कारुण्य, वात्सल्य, सौन्दर्य, कैशोर्य, माधुर्य आदि कल्याण-गुणों के सागर हैं। वे इतने उदार हैं कि 'स्मरतः पादकमलमात्मनमपि यच्छति[2] अर्थात् जो उनके श्रीचरण-कमलों का स्मरण करते हैं, उनको वे अपने को भी दानकर डालते हैं। चराचर सभी प्राणियों के अन्दर अन्तर्यामी रूपसे निवास करते हैं, उनके नियन्ता हैं, उन्हीं के श्रीचरण-कमलों के ध्यान से निर्मल हुई बुद्धि द्वारा बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि, मुनि-महामुनि तत्त्वका साक्षात्कार करते हैं; शिष्यों के प्रति प्रतिभानुसार उपदेश करते हैं एवं आध्यात्मविद्या का भली-भाँति प्रवर्तन करते हैं। अतः सबको अभय देने वाले वे भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र परागति हैं। श्रुति स्वयं कहती है–

पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः।[3]

भले ही कोई किसी दूसरे देवता का भक्त हो, शक्ति की उपासना करने वाला शाक्त हो, गणपति (गणेश) की

---

(१) श्रीमद्भगवद्गीता १२/७ (२) श्रीमद्भागवतम् १०/८०/११
(३) कठोपनिषद् १/३/११

उपासना करने वाला गाणपत्य हो, शिव की उपासना करने वाला शैव हो और कर्म की उपासना करने वाला चाहे मीमांसक हो, वे यह समझते हैं कि हमारा उपास्य कोई दूसरा है, किन्तु असल में इसका कारण यह है–

यथाऽद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिता प्रभो ।
विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत् त्वां गतयोऽन्ततः ॥[१]

जैसे नदियाँ पहाड़ों से निकलती हैं वर्षा से भर जाती हैं, फिर सागर में प्रवेश करती हैं, वैसे ही जितनी गतियाँ (मार्ग) हैं, जितने भी सम्प्रदाय हैं तथा वाद हैं वे सब जाकर अन्त में हे प्रभो! आप में ही मिलते हैं। श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं–

येऽप्यन्य देवता भक्ताः यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥[२]

हे कुन्ती पुत्र अर्जुन ! जो कोई भी भक्त श्रद्धायुक्त होकर दूसरे देवताओं की उपासना करते हैं; वे भी मेरी ही उपासना करते हैं; परन्तु वह उपासना अविधिपूर्वक है। इससे सिद्ध हो गया कि भगवान् श्रीहरि सर्वदेवमय हैं, सर्वज्ञ वे सर्वगत हैं; सभी देवताओं में तत्तद् भोक्ता-रूपसे वे ही निवास करते हैं। सारी प्रजा उन्हीं की आराधना करती है। श्रीमद्भागवतकार भगवान् श्रीकृष्ण द्वैपायन लिखते हैं–

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।[३]

श्रीमद्भागवत के सुप्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामीजी "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" की टीका में उद्धृत करते हैं–

कृष्णस्तु साक्षान्नारायण एव आविष्कृतसर्वशक्तित्वात् ।

---

(१) श्रीमद्भागवतम् १०/४०/१० (२) श्रीमद्भगवदगीता ९/२३
(३) श्रीमद्भागवतम् १/३/२८

यदुकुलगुरु ज्योतिश्शास्त्रविद् गर्ग जी कहते हैं–

य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः ॥[१]

जो मनुष्य इन नारायण श्रीकृष्ण में प्रीति करते हैं, वे बड़े ही सौभाग्यवान् हैं। उनको शत्रु जीत नहीं सकते, जैसे भगवान् श्रीविष्णु के अनुयायी-सुरों को असुर पराभव नहीं कर पाते।

उपर्युक्त श्लोक में प्रीति शब्द से प्रीति-स्वरूप भक्ति ही अभिप्रेत है। "कृपाऽस्य दैन्यादियुजि प्रजायते यया भवेत् प्रेमविशेषलक्षणा" इसमें 'दैन्यादि' आदि पद की व्याख्या श्रीमन्निम्बार्कीयवैष्णवाचार्य जगद्विजयी श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टजी ने इस प्रकार की है–

आदौ दैन्यं हि सन्तोषः परिचर्या ततः परम् ।
ततः कृपा च सत्संगो ऽ प्यसद्धर्मारुचिस्ततः ॥
कृष्णे रतिस्ततः भक्तिर्या प्रोक्ता प्रेमलक्षणा ।
प्रादुर्भावे भवेदस्याः साधकानामायं क्रमः ॥

प्रेमलक्षणा-भक्ति का उदय होने पर उपासकों का यह क्रम हुआ करता है–सर्वप्रथम दासवत् दीनता और सन्तोष उसके बाद परिचर्या, कृपा, सत्संग, असद् धर्मों में अरुचि श्रीकृष्ण में रति (अनुराग) फिर वही प्रेमलक्षणा-भक्ति कही गयी है। देवर्षि नारद प्रचेताओं से कहते हैं–

तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः ।
नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ॥
यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥[२]

---

(१) वही १०/८/१८ (२) श्रीमद्भागवतम् ४/३१/९-१४

मनुष्यों का वही जन्म सार्थक है, वही कर्म श्लाघ्य है, वही आयु सफल है, वही वाणी उत्तम है और वही मन वास्तविक मन है, जिससे सर्वात्मा भगवान् श्रीहरि की उपासना की जा सके। जैसे वृक्ष के मूल-सेचन से छोटी-बड़ी, डाल-पाल-पत्ते सभी शाखाऐं हरी-भरी हो जाती हैं। जैसे प्राण को भोजन देने से सारी इन्द्रियाँ तृप्त हो जाती हैं, पृथक्-पृथक् इन्द्रियों में अन्न-लेपन नहीं करना पड़ता है; उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के पूजन से सब देवताओं का पूजन हो जाता है। मगधराज जरासन्ध ने बीस हजार आठ सौ राजाओं को युद्ध में पराजित कर (हराकर) गिरिव्रज नामक कैद में बन्दी बनाकर डाल दिया था। भगवान् श्रीकृष्ण ने भीमसेन का रूप धारणकर जरासन्ध का वध किया और इसके बाद श्रीभगवान् जरासन्ध के पुत्र सहदेव का राज्याभिषेककर उन बन्दी राजाओं से मिलने के लिए जेल में गये, वहाँ जाकर वे समस्त राजाओं को जेल से मुक्त कर दिये। उस समय राजाओं के मुखकमलों से यह मन्त्र निकला–

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥[१]

राजा युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में यह प्रश्न उठा कि सभासदों में से अग्रपूजन किसका हो? वहाँ बड़े-बड़े सुयोग्य पुरुषों का आधिक्य होने के कारण बहुत देर तक इसका ठीक-ठीक निर्णय जब न हो सका तब भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव से पूर्णतया सुपरिचित जरासन्ध के पुत्र सहदेव ने खड़े होकर भरी सभा में कहा–

अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान् सात्वतां पतिः ।
एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥

---

(१) श्रीमद्भागवतम् १०/७३/१६,

यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः ।
अग्निराहुतयो मन्त्राः सांख्यं योगश्च यत्परः ॥
एक एवाद्वितीय ऽ सावैतदात्म्यमिदं जगत् ।
आत्मना ऽऽत्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥
विविधानीह कर्माणि जनयन् यदवेक्षया ।
ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥
तस्मात्कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् ।
एवं चेत्सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत् ॥
सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने ।
देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ॥[१]

सहदेव ने तो समस्त वेदान्त-शास्त्र का सार ही सुना दिया है। श्रीमद्भागवत-प्रवक्ता श्रीशुकदेवजी ने भी इस परिदृश्यमान नामरूपात्मक जगत् को श्रीभगवत्स्वरूप बतलाया है–

वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ।
भगवद्रूपमखिलं नान्यद् वस्त्विह किञ्चन ॥
सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ।
तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद् वस्तु रूप्यताम् ॥[२]

उपर्युक्त श्लोकों का सारांश यह है–हे सभासदो ! आप लोग इस शुभ कार्य में व्यर्थ का विलम्ब क्यों कर रहे हैं? सुनिये हमारे बीच में विराजमान भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र अग्रपूजन के योग्य हैं। इनके सच्चिदानन्द विग्रह में समस्त देवता, देश, काल, धन, धर्म, यहाँ तक कि सम्पूर्ण चराचर जगत् निवास करता है। यह परिदृश्यमान् नामरूपात्मक संसार इन्हीं का स्वरूप कहा गया है। इस दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् की इन असाधारण

(१) श्रीमद्भा० १०/७४/१९-२४ (२) वही,

शक्तिसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण से ही सृष्टि, स्थिति और विनष्टि होती है। ये ही जीवों के द्वारा किये गये यज्ञादि कर्मों का फल प्रदान करते हैं। अत: साक्षात् यज्ञपुरुष श्रीकृष्ण के उपस्थित रहते दूसरा कौन अग्रपूजन के योग्य हो सकता है? यज्ञ, अग्नि, आहुति, मन्त्र, सांख्य, योग, सब-के-सब इन्हीं के लिए हैं। अत: हमारे विचार से सर्वप्रथम श्रीकृष्णपूजन ही होना चाहिए। इनके पूजन से सब भूतों का तथा आत्मा का भी पूजन हो जाता है। श्रीभगवान् कहते हैं–

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।
मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।[१]

मैं समस्त जगत् की उत्पत्ति का कारण हूँ, मुझ से ही इस जगत् का देवलोक एवं मनुष्य लोकादि में बारम्बार आवागमन, वृद्धि, ह्रासादि समस्त प्रवृत्त होता है। इसलिये मैं ही सम्पूर्ण जगत् का प्रभव तथा प्रलय हूँ। प्रभव का अर्थ है–उत्पत्ति स्थान उत्पन्न होने वाले का प्रभव अपादान होता है।[२] हे धनञ्जय ! मुझ से श्रेष्ठ जगत् में कोई वस्तु नहीं है। अर्थात् मुझसे परे जगत् का कारण और स्वतन्त्र कोई नहीं है। सबका कारण-जनक मैं ही हूँ। उपर्युक्त शास्त्र-वचनों से यह सिद्धान्त-स्थापन हो गया कि-इस दृश्यमान नाम-रूपात्मक विश्व का जन्म-उत्पत्ति, स्थिति-पालन और अन्त में संहार-प्रलय विश्वात्मा श्रीकृष्ण से ही साधित होता है।

---

(१) श्रीमद्भगवदगीता १०/८/७/६-७

(२) प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः - परमकारणमित्यर्थः।
यथा हिमवतो गंगा प्रभवति, तथा भगवतः, भुवः प्रभवश्च।
- पाणिनिसूत्रपाठः १/४/३१

'रसगंगाधर' के रचयिता पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं-

मृद्वीका रसिता सिता समशिता स्फीतञ्च पीतं पयः
स्वर्यातेन सुधाप्यधायि कतिधा रम्भाधरः खण्डितः।
सत्यं ब्रूहि मदीय जीव ! भवता भूयो भवे भ्राम्यता
कृष्णेत्यक्षरयोर्द्वयोर्मधुरिमोद्गारः क्वचिल्लक्षितः॥

हे मेरे जीव ! तुमने बार बार इस जन्म-मरण रूप संसार में भटकता हुआ अंगूर खाया है, मिश्री चखी है, पवित्र दूध पिया है, स्वर्ग में जाकर अमृत पान भी किया है, वहाँ रम्भादि अप्सराओं का अधर (ओठ) चुम्बन भी किया है? तुम सच-सच बताओ 'कृष्ण' इन दो अक्षरों में जो माधुर्य-उद्‌गार है, वह कहीं देखा? श्रीभगवन्नामकौमुदीकार मनीषी श्रीलक्ष्मीधरजी ने कहा है—कृष्णनाम दीक्षादि के बिना ही मोक्ष-पर्यन्त फल को देने वाला है-

आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसा-
माचाण्डालममूकलोकसुलभो वश्यश्च मोक्षश्रियः ।
नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते
मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः ॥

शुद्धचित्त भक्तों का आकर्षण करता हुआ, महापापों का नाश करने वाला, गूंगों को छोड़कर चाण्डाल से लेकर सकल जनों को सुलभ और मोक्ष-साधन का दाता यह श्रीकृष्णनामात्मक मन्त्र-दीक्षा, दक्षिणा और अनुष्ठान बिल्कुल की ही अपेक्षा नहीं करता है। रसना-स्पर्श से ही फल होता है। श्रीभगवन्नाम की अपार महिमा है, सभी युगों में इसकी महिमा का विस्तार है, शास्त्रों और बड़े-बड़े मनीषियों ने सभी युगों के लिए मुक्त-कण्ठ से श्रीभगवन्नाम-महिमा का गान किया है, परन्तु कलियुग के

लिए तो इसके समान मुक्ति का कोई दूसरा उपाय (साधन) ही नहीं बतलाया गया है।

यथा- **हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।**
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।[१]

कलियुग में केवल श्रीहरि नाम ही मोक्ष का सर्वश्रेष्ठ साधन है, इसको छोड़कर दूसरा कोई उपाय ही नहीं है।

श्रीमद्भागवत में श्रीभगवन्नाम का माहात्म्य अधिकतर गाया गया है-

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ।।
पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः ।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ।।
म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम् ।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ।।[२]

पुत्र आदि किसी का संकेतपर (नामरखकर) हास-परिहास में, गान में, निन्दा से या किसी प्रकार से यदि मनुष्य श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण करता है, तो उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, उसे यम की नारकी यातना नहीं भोगनी पड़ती है। जो मनुष्य ऊँचे स्थान से गिरते समय, मार्ग में पैर फिसलते समय, अंग-भंग होते समय, साँप के डसते समय और विवशता से (लाचार होकर) "हरि-हरि" कहकर नामोच्चारण कर लेता है, वह यम की नरक-यातना का पात्र नहीं रह जाता है। म्रियमाण अजामिल मरते समय पुत्र के व्याज से हरि-नाम-उच्चारण कर परम धाम को चला गया, तब जो श्रद्धा-भक्ति से हरि का नाम

(१) नारदपुराणम् १४/१/१५ (२) श्रीमद्भागवतम् ६/२/१४/५/४६

उच्चारण करता है, उसका तो कहना ही क्या है। राधाजी के पक्ष में :– हरिणी–हारिणी[२] अथवा 'हरा–हरा[१]' कहकर जो नामोच्चारण कर लेता है, वह यम की नरक-यातना का अधिकारी नहीं रह जाता है। शास्त्र में शब्दार्थ-निर्णय करने के लिए सर्वप्रथम व्याकरण का सहारा लेना पड़ता है, यह सर्ववादिसम्मत है। प्रकृति (धातु) और प्रत्यय के योग से शब्द बनता है। जैसे हरि, हर, हरा। हरिनारायण, हरशंकर और हराराधा। इन शब्दों की प्रकृति का सम्बन्ध होने से शब्दार्थ भी भिन्न हो जाता है। तब 'हरेकृष्ण' इन पदों का अर्थ 'राधेकृष्ण' हो जायगा। राधाजी के अंश से ही सारी देवियाँ प्रकट हुई हैं, इस बात को शास्त्र-प्रमाणित कर हम आगे कहेंगे।

भगवान् श्रीहरि का स्मरण-कीर्तन समस्त विपत्तियों से मुक्त कर देता है–

हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ।[३]
कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥[४]

कलि के दोषों को दूर करनेवाला एकमात्र श्रीभगवन्नाम ही है। यद्यपि कलि दोषों का खजाना है तथापि इसमें एक महान्

---

(१) देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, (सप्तशती चण्डी अ० ११/३)
(२) हिरण्यवर्णां हरिणीम्, श्रीसूक्तम्।
या श्रीः सा राधा इत्युक्तेः।
(३) श्रीमद्भागवतम् ८/१०/५५
(४) वही १२/३/५१,५२

गुण है कि षोडशाक्षरी-युगलनाम-महामन्त्र के संकीर्तन[१] से मनुष्य सांसारिक बन्धनों से छूटकर परम धाम को प्राप्त कर लेता है। सत्ययुग में भगवान् विष्णु का ध्यान करने से, त्रेतायुग में यज्ञों से, द्वापरयुग में परिचर्या-सेवा-पूजा करने से जो फल मिलता है, कलियुग में केवल श्रीहरिनाम-संकीर्तन से ही वही फल प्राप्त होता है। ज्ञान अथवा अज्ञान से उच्चारण किया गया श्रीभगवन्नाम वैसे ही पाप-राशि को भस्म-कर देता है, जैसे अग्नि काठ तथा तूलराशि को भस्म कर देती है। जैसे अनजान में भी किया गया अग्नि का स्पर्श हाथ जला देता है, उसी तरह अनजान में अनिच्छा से भी पापियों द्वारा उच्चारण किया गया श्रीभगवन्नाम उनकी पाप-राशि को भस्मकर देता है। नाम की शक्ति के विषय में गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं–

राम न सकहिं नाम गुन गाई ।

● ● ●

कृतान्तस्य दूती जरा कर्णमूले समागत्य वक्तीति लोकाः शृणुध्वम् ।
परस्त्रीपरद्रव्यवाञ्छां त्यजध्वं भजध्वं रमानाथपदारविन्दम् ॥

अर्थात् हे संसारी मनुष्यो ! यमराज की दूती जरा (वृद्धावस्था) मनुष्यों के कर्ण के समीप आकर कहती है, उसे जरा ध्यान से सुनो–परायी स्त्री तथा पराये धन को हड़पने की इच्छा छोड़ दो और श्रीपति भगवान् कृष्ण के चरणकमल का भजन करो।

●

(१) संकीर्तन – राधेकृष्ण राधेकृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे।
राधेश्याम राधेश्याम श्याम श्याम राधे राधे ।।

श्रीभगवद्दिनचर्या

भगवान् श्रीकृष्ण नित्य प्रातःकाल उठकर क्या-क्या क्रिया करते थे, श्रीमद्भागवतकार महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन ने उसका वर्णन किया है–

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥[1]

रमापति कृष्ण ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर जल से आचमन करके तम से परे स्वभावतः समस्त दोषों से शून्य अपने ज्योतिर्मय स्वरूप का ध्यान करने लगे। यहाँ **"माधव आत्मानं दध्यौ"** कहा है। श्रीमद्भागवत में और भी एक जगह लिखा है-**"अच्युत आत्मानं ववन्दे[2]"**। श्रीमद्भागवतकार ने बिल्कुल ही ठीक लिखा है–

न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।[3] न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः ।[4]
तस्मादच्युतः माधवः आत्मानं दध्यौ ववन्दे च ।

भगवान् श्रीकृष्ण के समान तथा उनसे बढ़कर दूसरा ध्येय नहीं है। इसलिये वे अपने स्वरूप का ध्यान तथा वन्दना करते थे। किसलिये करते थे, उसे जरा ध्यान से सुनें। श्रीभगवान् श्रीमन्नारद जी से कहते हैं–

ब्रह्मन् ! धमस्य वक्ताऽहं कर्ता तदनुमोदिता ।
तच्छिक्षयल्लोकमिममास्थितः पुत्र ! मा खिदः ॥[5]

---

(१) श्रीमद्भागवतम् १०/७०/४, वही (२) १०/८६/५८
(३) श्वेताश्वतरोपनिषद् ६/८ (४) श्रीमद्भागवदगीता ११/४३
(५) श्रीमद्भागवतम् १०/६९/४०

हे ब्रह्मन् ! हे पुत्र ! मैं धर्म का वक्ता हूँ, उसका आचरण करनेवाला हूँ और उसकी सम्मति देनेवाला हूँ। लोगों को मेरे आचरण से शिक्षा मिलेगी, इस ख्याल से मैं धर्माचरण करता हूँ। मैं जो आप सरीखे महात्माओं का पादप्रक्षालन करता हूँ और ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर ध्यान लगाता हूँ, इस से तुम खेद मत करो। **कृष्णः पादावनेजने ।**[१]

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥[२]

हे पार्थ ! मेरा कोई कर्तव्य नहीं है, क्योंकि तीनों लोकों में मेरा अप्राप्य या प्राप्य कुछ भी नहीं है तथापि मैं कर्म में ही लगा रहता हूँ। हे पार्थ ! अगर मैं कदाचित् अनलस होकर कर्मों में न बरतूँ तो सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही आदर्श का अनुसरण कर कर्म करना छोड़ देंगे। यदि में विहित कर्म का अनुष्ठान न करूँ तो ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायँगे, मैं वर्णसंकरता की उत्पत्ति का कारण होंऊँगा और उससे सारी प्रजाओं के नाश का भी कारण बनूँगा।

"एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन् सतां गतिः"[३]

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने वेदोक्त धर्म का अनुष्ठान करते हुए संसार के गृहस्थ मनुष्यों के लिए आदर्श स्थापित

---

(१) वही १०/७५/५ (२) श्रीमद्भगवदगीता ३/२२,२३,२४
(३) श्रीमद्भागवतम् १०/६०/२८

किया। अतः सब के आराध्य-उपास्य-वन्द्य-स्तुत्य-नमस्यं-अर्च्य-ध्येय नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ही हैं।

कर्मभूमिमिमां प्राप्य कर्तव्यं कर्म यच्छुभम् ।[1]

भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रम् ।[2]

इस कर्मभूमि भारतवर्ष को पाकर जो शुभ कर्म हो, उसका अनुष्ठान करना चाहिए, क्योकि भारतवर्ष ही कर्मभूमि है। देवतागण भी भारतवर्ष के महत्त्व का यों गान करते हुए कहते हैं-

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मकुन्दसेवौपयिकं स्पृहाहिनः।।[3]

'अहो इन भारतवसियों ने कौन-सा ऐसा पुण्य किया होगा जिससे स्वयं श्रीहरि ने इन पर प्रसन्न होकर इन्हें भारत के प्रांगण में जन्म दिया ! यहाँ भगवान् श्रीमन्मुकुन्द की सेवा करने का उपाय व सब साधन उपलब्ध हैं। हम लोग तो इसके लिए तरसते हैं।' हमारे परमेष्ठी श्रीगुरुदेव योगिराज श्री १०८ स्वामी रामदास काठियाबाबाजी श्रीधाम वृन्दावन में रहते समय प्रसंगवश कहे थे कि कुछ सदुपदेशों का पालन करने से साधकों का कल्याण होता है। जिसे रात्रि के चौथे प्रहर को **'ब्राह्म-मुहुर्त'** काल कहते हैं, उस समय निद्रित न रहना। इस उपदेश के अनुकूल साधुओं का उपदिष्ट एक पद्य है, वह भी बताया है-

पहले पहर में सब कोई जागे, दूसरे पहर में भोगी ।
तिसरे पहर में तस्कर जागे, चौथे पहर में जोगी ॥

---

(१) श्रीमद्वाल्मीकीयमादिकाव्यं रामायणमयोध्या काण्डः १०६/२८
(२) श्रीमद्भागवतम् ५/१७/११, वही (३) ५/१६/२१

आयुर्वेद में लिखा है–

ऐश्वरोऽपि नियमोऽयमिहास्ते
यः स्वपित्युषसि हा ! रविभासे ॥
सौप्तिसौख्यमधमः स हि भुङ्क्तां
तस्य सर्वसुखमत्ति विधाता ॥
यो विबुध्य सुखमुज्झति नित्यं
सौप्तिकं निजमनोबलयोगात् ।
तस्य वीरपुरुषस्य नितान्तं
दीर्घमायुरथ सर्वसुखं स्यात् ॥

इस लोक में ईश्वर सम्बन्धी यह नियम बताया है कि जो उषः काल में सूर्योदय होने पर सोता है, वह अधम है। निद्रा-सम्बन्धी सुख को भोगने से विधाता उसका सब कुछ खा जाता है। जो उस समय निज मनोबल (योग) से जगकर प्रतिदिन निद्रा-सम्बन्धी सुख को त्यागता है, उस वीर पुरुष को नितान्त दीर्घायुष्य और सब सुख प्राप्त होता है। महर्षि मनु ने भी कहा है–**ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत** ।[१] ब्रह्म-मुहूर्त में जगजाना चाहिये। श्रीभगवान् उद्धव जी से कहते हैं–हे प्रिय उद्धव ! जो लोग सद्गृहस्थ-जीवन न बिताकर घर-गृहस्थी में ही आसक्त हो जाते हैं, स्त्री, पुत्र और धन की कामनाओं में फँसकर हाय-हाय करते हैं, मूढतावश स्त्री-लम्पट और कृपण होकर मैं-मेरे के फेर में पड़कर वे बँध जाते हैं। वे सोचते रहते हैं हाय-हाय मेरे माँ-बाप बूढ़े हो गये, पत्नी के लड़के-बच्चे अभी छोटे-छोटे हैं, मेरे न रहने पर सब दीन-अनाथ और दुःखी हो जायँगे, फिर इनका जीवन कैसे रहेगा।[२] इसलिये–**गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।**

---

(१) मनुस्मृतिः ४/९२ (२) श्रीमद्भागवतम् ११/१७/५६/५७

मृत्यु-काल सबके सिर पर सवार है, ऐसा समझकर मनुष्यों को धर्मका आचरण करना चाहिए। जब बुलावा आवेगा तब सब कुछ छोड़कर जाना पड़ेगा।

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे
नारी गृहद्वारि जनाः श्मशाने ।
देहश्चितायां परलोकमार्गे
धर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

धन पृथिवी में गड़ा रह जायेगा, पशु गोष्ठ में पड़े रहेंगे, स्त्री दरवाजे तक साथ देगी, पारिवारिक-जन श्मशान तक जायँगे, शरीर चिता में जलता रहेगा, परलोक-मार्ग में आगे चलकर केवल एक धर्म ही साथ में जाता है। धर्म के विषय में आदिकाव्यकार महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है–

धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् ।
धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम् ॥
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ।

धर्म शब्द का अर्थ है-**ध्रियतेऽधः पतन् पुरुषोऽनेनेति धर्मः** -नीचे गिरते हुए पुरुष को जो धारण करता है अर्थात् बचाता है। इसलिये धर्माचरण करना चाहिये। संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। धर्म में ही सत्यस्वरूप परमात्मा निवास करते हैं। धर्म से सही अर्थ की प्राप्ति होती है। धर्म से सुख का उदय होता है। मनुष्य धर्म से सब कुछ प्राप्त कर लेता है। इस संसार में धर्म ही सार है। वह मूढ़मति इस प्रकार स्त्री-पुत्र-कुटुम्ब के भरण-पोषण के लिए धन-राशि की चिन्ता करते-करते क्षण भर में मर गया।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः ।

इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनी गज उज्जहार ॥

भ्रमर सायं-काल कमल के पुष्प में बैठा, कमल बन्द हुआ तो उसमें वह भी बन्द हो गया, वहाँ बैठकर वह इस तरह सोच रहा था:-रात्रि बीत जायेगी, फिर सूर्योदय होगा तो यह कमल खिलकर कितना सुशोभित होगा ! तब तक एक हाथी आ गया और वह कमल के साथ भ्रमर को भी चबा गया। अतः संसार में विषय-तृष्णा की चिन्ता करनेवाले लोग काल के साथ इस प्रकार जुआ खेल रहे हैं।

शुद्धभावं समाश्रित्य जीवने सर्वथा चर ।
कायेन मनसा वाचा हरिं भज निरन्तरम् ॥

जीवन में अच्छी-अच्छी भावनाएँ-विचारधाराएँ अपनाएँ बाह्य निन्दा-स्तुति पर ध्यान न देकर हमेशा निष्पाप और निष्कपट होकर धरती पर विचरें तथा मन, वाणी और शरीर से भगवान् श्रीश्रीराधाकृष्ण का भजन व ध्यान करें।



भगवान् श्रीपुरुषोत्तम का स्वरूप

अब हम आप लोगों के समक्ष भगवान् श्रीपुरुषोत्तम (युग्मतत्त्व) का ध्यान प्रस्तुत करते हैं। भावुक तथा रसिकजन इसका एकाग्र चित्त से ध्यान करें –

अपीच्यदर्शनं शश्वत् सर्वलोकनमस्कृतम् ।
सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रकातरम् ॥१॥
सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम् ।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वंशीकरं श्रीसेवितम् ॥२॥
गोपगोपीगवावीतं सुरद्रुमलताश्रितम् ।
दिव्यालंकरणोपेतं रत्नपंकजमध्यगम् ॥३॥
कालिन्दीजलकल्लोल-संगिमारुतसेवितम् ।
चिन्तये चेतसा कृष्णं वनमालिनमीश्वरम् ॥४॥
किशोरीं कृष्णसहितां नीलाम्बरधरां शुभाम् ।
दक्षिणे धृतताम्बूलं पाणौ वामे समुद्गकम् ॥५॥
धारयन्तीं स्वर्णभूषां सदा कृष्णानुरागिणीम् ।
कृष्णास्यनयनासक्तां हारनूपुरभूषिताम् ॥६॥
नवीनां हेमगौरांगीं पूर्णानन्दवतीं सतीम् ।
वृषभानुसुतां देवीं वन्दे राधां जगत्प्रसूम् ॥७॥

कैशोर–सोलह साल की अवस्था वाले, हमेशा किशोर कृष्ण का दर्शन बड़ा ही सुन्दर है, जिनको ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादि लोकपाल सदा नमस्कार करते हैं, वे अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए हमेशा व्याकुल रहते हैं॥१॥ जिनके कमल–नयन अतिसुन्दर एवं मनोहर हैं, जिनका नीलमेघ के

समान सुन्दर श्याम विग्रह है, जिसमें बिजली के समान पीताम्बर चमक रहा है। दो भुजावाले, ज्ञानमुद्रा से युक्त, दिव्य अलंकारो से सुशोभित रत्नकमल के बीच में बैठे हुए, यमुना जल की लहरों से शीतल-सुगन्ध-मन्दयुक्त वायु से सेवित, वनमाली परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण का मैं शुद्ध चित्त से ध्यान करता हूँ।।२-४।। **किशोरी :** सोलह साल की अवस्थावाली, राधा दीप्तिमती नीली साड़ी धारण की है, उनके दाहिने हाथ में ताम्बूल (पान) और बायें हाथ में पान-दानी है। वे सदा सुवर्ण के आभूषण धारण करती हैं। रत्नों द्वारा निर्मित हार एवं नूपुर आदि आभूषणों से युक्त हैं। भगवान् कृष्ण के अनुराग में अनुरक्त हैं, उनके मुखचन्द्र और कमलनयनों की ओर निहार रही हैं। राधाजी के सर्वांग तप्त स्वर्ण के समान हैं। उन पूर्णानन्दवाली जगज्जननी राधा जी की मैं वन्दना करता हूँ।।५-७।। यमुना नदी कलिन्द-पर्वत से निकली है। सूर्य की पुत्री यमुना ने कालिन्दी-जल में कृष्ण को पति बनाने के हेतु तपस्या की थी। इसलिये यमुना का नाम कालिन्दी पड़ा।

श्रीमुकुन्दं[1], जगद्योनिं निर्दोषं सद्‌गुणार्णवम् ।
ब्रह्मरुद्रमहेन्द्रादि वन्द्यं नित्यं समाश्रये ।।[2]

---

(१) वेदान्तकारिकावली, मुक्तिं ददातीति मुकुन्दः, श्रिया-राधया सह सदा वर्तते श्रीमुकुन्दः - राधामुकुन्द इत्यर्थः, तमहं नित्यं समाश्रये-सम्यक् आश्रये। मुक्तिमिच्छेज्जनार्दनात् इत्युक्तेः। तथैव श्रीमद्‌भागवते देवैरुक्तः -

वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः।
एक एवेश्वरस्तस्य भगवान् विष्णुरव्ययः।।

हे राजन् ! ते भद्रमस्तु नोऽस्माकं सकाशात् वरं वृणीष्व-वृणीहि, कैवल्यं ऋते-बिना तस्य-कैवल्यस्य दाता एक एव भगवान् विष्णुः। हरिवंशेऽपि-मुक्तिप्रदाता सर्वेषां विष्णुरेव न संशयः। राध्नोति सकलान् कामांस्तस्माद् राधेति कीर्तिता। इत्युक्तेः। राध साध संसिद्धौ धातुः।

(२) श्रियं देवीमुपध्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्। इति श्रुतेः।
ननु ब्रह्मन् भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियः पतिः।
आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः।। श्रीमद्‌भा० १०/८०/११

माया-गुण-दोषों से रहित, सद्-गुणों का सागर, जगत् का कारण और ब्रह्मा, शंकर, इन्द्रादि लोकपाल द्वारा नित्य वन्दनीय भगवान् श्रीमुन्मुकुन्द की मैं भली भाँति शरण में हूँ। भजन करने वालों को वे मुक्ति देते हैं और उनकी प्रिया (श्रीजी) सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करने वाली हैं। महर्षि श्रीमद्औदुम्बराचार्य जी ने अपने मान्य ग्रन्थ "औदुम्बर-संहिता" नामक ग्रन्थ में युग्मतत्त्व की समीक्षा विशेष रूप से की है–

जयति सततमाद्यं राधिकाकृष्णयुग्मं
व्रतसुकृतनिदानं यत्सदैतिह्यमूलम् ।
विरलसुजनगम्यं सच्चिदानन्दरूपं
व्रजवलयविहारं नित्यवृन्दावनस्थम् ॥
कल्लोलकौ वस्तुत एकरूपकौ
राधामुकुन्दौ समभावभाषितौ ।
यद्वत् सुसम्पृक्तनिजाकृतिध्रुवा-
वाराधयामो व्रजवासिनौ सदा ॥

राधाकृष्ण का यह युग्म नित्य-सर्वदा विद्यमान रहता है। यह युग्म सब का कारण है। व्रतोपवास और सुकृत-पुण्य का आदिकारण है तथा परम्परोपदेश का मूल है। विरले ही सुजन-शिष्टजन इस युग्मतत्त्व को जानते हैं। यह जुगल जोड़ी सत्, चित् और आनन्दरूपा है। यह जुगल जोड़ी हमेशा व्रज में रहती है और व्रजमण्डल में विहार करती है। व्रज की व्याख्या स्कन्द-पुराण में इस प्रकार है–

व्रजनं व्याप्तिरित्युक्त्या व्यापनाद् व्रज उच्यते ।
गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं व्रज उच्यते ॥

'व्रजन' शब्द से व्याप्ति कही गई है और व्यापन होने से इसको 'व्रज' कहते हैं। अर्थात् जो सर्वव्यापी है उसको 'व्रज' ऐसा विद्वज्जन कहते हैं। निष्कर्ष यह निकला कि सब जगहों में रहने वाले, विहार करने वाले भगवान् श्रीश्रीराधाकृष्ण युगल सरकार। हम उनकी उपासना करते हैं। उनकी जय हो, जय हो, राधा और मुकुन्द दोनों समभावयुक्त अपरिच्छिन्न परमानन्द में अवस्थित रहते हैं। दो दृष्टि-गोचर होने पर भी वस्तुतः दोनों एक रूप ही हैं। इनकी आकृतियाँ आपस में एक-दूसरे से शब्द और अर्थ के समान सदा सम्मिलित हैं। इस विषय में वीचि-तरंगद्वय उदाहरण देते हैं–

जिस प्रकार नदी के वक्षःस्थल पर प्रवाहित होने वाले दो कल्लोल (दो लहरों) को लोग अलग-अलग देखते हैं, परन्तु दोनों मिलकर एक रूप ही जाते हैं, ठीक उसी प्रकार वस्तुतः युग्मतत्त्व एक ही रूप है। सामरहस्योपनिषद् में कहा गया है कि स्वरमण के निमित्त ही परमपुरुष ने निज रूप प्रकटित किया। वह स्वयं आराधना में तत्पर हुआ, उसे ही 'राधा' नाम से जाना जाता है–**स वा अयं पुरुषः स्वरमणार्थं स्वरूपं प्रकटितवान् तद्रूपं रससम्बलितमानन्द रसो यं पुराविदो वदन्ति । सर्वे आनन्दरसाः यस्मात्प्रकटिता भवन्ति...........स य अयं पुरुषः समाराधनमकरोद् अतो लोके वेदे च राधा गीयते ।** लोक और वेद प्रसिद्ध भगवान् पुरुषोत्तम ने अपने रमण के लिये अपना स्वरूप प्रकटित किया, वह रूप रस से मिला हुआ यह आनन्द-रस है, ऐसा पुरावेत्ता लोग कहते हैं। सारे आनन्द-रस जिससे प्रकटित होते हैं, वह परम पुरुष स्वयं ही सम्यक् आराधना में तत्पर हुआ। इसलिए वह खुद ही भली भाँति आराधन (आ-

समन्ताद्, राधन-पूजन) किया, इसलिए लोक और वेद में 'राधा' नाम से संकीर्तन है। इससे यह सिद्ध हुआ कि श्रीभगवदाराधन ही राधा है। निचोड़ यह निकला कि सेवा-पूजा ही राधा है। उपर्युक्त वेदार्थ को भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन अपनी कृतियों में विस्तार करके बतलाये हैं—**स तया श्रद्धया युक्तस्तस्या राधनमीहते ।**[१] 'हे अर्जुन ! मेरे द्वारा स्थिर की हुई उस श्रद्धा से युक्त हुआ वह, उसी देवता की सेवा-पूजा (राधन) करने में तत्पर होता है।' रुक्मिणी बड़ी उत्सुकता से भगवान् श्रीकृष्ण के आगमन एवं पाणिग्रहण के समय की प्रतीक्षा करती हुई कहती हैं—

अहो त्रियामान्तरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः ।
नागच्छत्यरविन्दाक्षो नाहं वेदम्यत्र कारणम् ॥[२]

'अहो मेरी शादी में अब सिर्फ एक रात की देरी है, मालूम पड़ता है, मैंने अल्पाराधन (पूजन) किया, जिससे कमलनयन भगवान् गोविन्द अभी भी नहीं आ रहे हैं और इसमें क्या कारण है, वह भी मैं नहीं जानती हूँ।'

देखिये जिसका मन पवित्र होता है, उसकी रुचि सदा सद्वस्तु की ओर ही होती है। हमारी इस बात को आप लोग अन्यथा न समझें। महाकवि कविवर कालिदास ने "अभिज्ञान-शाकुन्तलम्" नामक नाटक में इसका वर्णन किया है कि एक समय पुरुवंशी राजा दुष्यन्त शिकार खेलते हुए महर्षि कण्व के पावन आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ वे विश्वामित्र की अत्यन्त सुन्दरी कन्या शकुन्तला को देखकर सोचते-विचारते हैं—

---

(१) श्रीमद्भागवतगीता ७/२२ (२) श्रीमद्भागवतम् १०/५३/२३

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा
यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः ॥[१]

'मेरा मन आर्य-पवित्र है, इसमें कोई संशय नहीं है। तभी तो मेरा पवित्र मन इस (शकुन्तला) पर आसक्त हो रहा है, अतः यह अवश्य ही कोई क्षत्रिय-राजकन्या होगी, ऋषि-कन्या नहीं। मुझ राजन्य के साथ पाणिग्रहण करने योग्य है। सच्ची बात तो यह है कि सज्जनों के लिए सन्दिग्ध वस्तु के सम्बन्ध में अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ ही प्रमाण होती हैं। कहने का मतलब यह है कि जिसका मन आर्य है, उसके सामने गोपनीय वस्तुएँ भी दिखाई पड़ती हैं, श्रीमद्भागवत्-प्रवक्ता श्रीशुकदेवजी महाराज ध्यान-मग्न होकर भगवान् का स्तबन करते हुए राधाजी का स्मरण करते हैं–

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ।
निरस्तसाम्यातिशयेन 'राधसा'
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यतें नमः ॥[२]

यह श्रीमद्भागवत् दुरूह-दुर्गम ग्रन्थ है, जिसके लिये हमारे विद्वत्समाज में यह निम्नांकित श्लोक प्रसिद्ध है–

हुताशने हाटकसंपरीक्षा
विपत्तिकाले गृहिणीपरीक्षा ।
रणस्थले शस्त्रभृतां परीक्षा
विद्यावतां भागवते परीक्षा ॥

(१) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, श्लोक १९ (२) श्रीमद्भागवतम् २/४/१४

अग्नि में सुवर्ण की, विपत्ति के समय स्त्री की, युद्धस्थल में शस्त्रधारी की और विद्वानों की परीक्षा श्रीमद्भागवत् में होती है। यदि वादी यहाँ 'राधसा' में यह शंका करे कि राधसा अजन्तपुँल्लिंगशब्द नहीं है; क्योंकि एक न्याय या तर्क है– **'प्रमाणाद्धि वस्तुसिद्धिः'** प्रमाण से ही वस्तु की सिद्धि होती है। अब उपर्युक्त वादी की शंका भगवान् श्रीश्रीराधाकृष्ण के वचनों से निराकरण करते हैं–

अहं च ललिता देवी पुंरूपा कृष्णविग्रहा ।
आवयोरन्तरं नास्ति सत्यं सत्यं हि नारद ।।[१]
भेदं हि चावयोर्मध्ये ये पश्यन्ति नराधमाः ।
देहान्ते नरकान् राधे ते प्रयान्ति स्वदोषतः ।।[२]

'हे नारद ! मैं ललिता देवी हूँ और पुरुषरूपधारिणी कृष्णमूर्ति भी मैं ही हूँ। हम दोनों में कोई भेद नहीं है, यह आप निश्चित सत्य समझें। हे राधे ! जो हम दोनों में भेद देखते हैं, वे नराधम-(मनुष्यों में नीच) अपने दोष से शरीरपात होने पर नरकों में चले जाते हैं। भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य ने स्वकृत वेदान्तपारिजातसौरभ नामक ब्रह्मसूत्र भाष्य में कहा है–

परमाचार्यैः श्रीकुमारैरस्मद्गुरवे श्रीमन्नारदायोपदिष्टो **"भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः"** इत्यत्र भूमा प्राणो न भवति किन्तु श्रीपुरुषोत्तमः।[३] हमारे परमगुरु श्रीसनकादि चतुस्सन (भगवान् सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) ने हमारे गुरु श्रीमन्नारद जी को भूमा-विद्या का उपदेश किया था। यहाँ 'भूमन्' शब्द प्राण का वाचक नहीं है, किन्तु श्रीपुरुषोत्तम (श्रीकृष्ण) का

---

(१) पद्मपुराण पातालखण्ड (२) गर्गसंहिता अश्वमेधखण्ड
(३) ब्रह्मसूत्रनिम्बार्कभाष्य सू. १/३/८

वाचक है। यहाँ पर आचार्यचरणोक्त श्रीपुरुषोत्तम-पद का अर्थ यों समझना चाहिये-'श्री' नाम राधा उनके पति पुरुषोत्तम कृष्ण जो लोक और वेद में विख्यात हैं:-**लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।**[1] राधायुक्त पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण विश्वसृष्टि करते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है-

विना मृदा घटं कर्त्तुं विना कुण्डलम् ।
कुलालः स्वर्णकारश्च न हि शक्तः कदाचन ॥
तथा त्वया विना सृष्टिमहं कर्त्तुं न च क्षमः ।
सृष्टेराधारभूता त्वं बीजरूपोऽहमच्युतः ॥
त्वं मे शोभास्वरूपाऽसि देहस्य भूषणं यथा ।
कृष्णं वदन्ति मां लोकास्त्वयैव रहितं यदा ॥
श्रीकृष्णं च तदा तेऽपि त्वयैव सहितं परम् ।

'जैसे कुम्हार मिट्टी के बगैर कुण्डल कभी तैयार नहीं कर सकता है, उसी प्रकार सुनार बिना सोने के आभूषण तैयार नहीं कर सकता। हे राधे ! उसी तरह मैं तुम्हारे बगैर विश्वसृष्टि करने में समर्थ नहीं हो सकता। हे राधे ! जैसे आभूषण शरीर की शोभा का हेतु है, उसी प्रकार तुम मेरी शोभा हो। जब मैं तुमसे अलग रहता हूँ, तब लोग मुझे कृष्ण कहते हैं और जब तुम साथ हो जाती हो वे लोग मुझे श्रीकृष्ण कहते हैं, इसलिये भगवान् वादरायण गीताशास्त्र के अध्यायों में लिखते हैं-**श्रीभगवानुवाच= श्रिया=राधयासह=भगवानुवाच**[2] इससे श्रीमद्भगवद्गीता का परमतात्पर्य श्रीश्रीराधाकृष्ण युग्मतत्त्व में ही है, यह अवश्य मन्तव्य है। श्रीमद्भगवद्गीता-माहात्म्य में लिखा है-

(१) श्रीमद्भागवदगीता १५/१८
(२) श्रीमद्भागवतम् ८/८/८
ततश्चाविर्भूत् साक्षाच्छ्री रमा भगवत्परा।

यत्र गीताविचारश्च पठनं-पाठनं तथा ।
मोदते भगवांस्तत्र कृष्णो राधिकया सह ॥

जहाँ पर श्रीमद्भगवद्गीता का विचार, पठन एवं पाठन होता है, वहाँ पर भगवान् कृष्ण राधा के साथ विराजते हैं। भगवान् कृष्ण को आनन्दित करने वाली उनकी पराशक्ति राधा समुद्र-मन्थन से निकली हैं।[१] वेदादि शास्त्रों में राधा को 'श्री' शब्द से पुकारा जाता है, अर्थात् राधाजी को 'श्रीजी' कहते हैं।

श्रीमज्जगद्गुरु भगवान् निम्बार्काचार्य ने राधाष्टक-स्तोत्र में लिखा है—**श्रियं चिन्तये सच्चिदानन्दरूपाम् ।**

मैं सच्चिदानन्दरूपा श्रीजी का चिन्तन (ध्यान) करता हूँ। राधा पद की व्याख्या—

१. राधयति वशीकरोति कृष्णमिति राधा । जो कृष्ण को वश में करती हैं वह राधा हैं।

२. यद्वा राध्यते आराध्यते भक्तजनैरिति राधा । जो भक्तजनों के द्वारा नित्य आराधिता हैं, उन्हें राधा कहते हैं।

३. यद्वा राध्यते-आराध्यते कृष्णेनेति राधा । कृष्ण के द्वारा आराधिता हैं, इसलिये राधा हैं।

४. यद्वा राधयति आराधयति कृष्णमिति राधा । जो कृष्ण की आराधना करती हैं, उन्हें राधा कहते हैं।

५. यद्वा राधयति-साधयति सर्वं कार्यं भक्तानामिति राधा।

---

(१) रंजयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत् सौदामिनी यथा।।
श्रीः - राधा भगवन्तं कृष्णं रमयति- आनन्दयति। सा परा- शक्तिः।
पराऽस्य शक्तिः = श्वेताश्वतरोपनिषद् ६/८
एवं वृन्दावनं श्रीमत्कृष्णः प्रीतमना पशून्।
रेमे संचारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः।। श्रीमद्भा० १०/१५/६
श्रीमत्कृष्णः - श्रीमत्या-राधया सहेति शब्दार्थवत् तयोर्नित्यः सम्बन्धो बोध्यः।

जो अपने भक्तों के सम्पूर्ण कार्यों की सफलता प्राप्त करवा देती हैं, उन्हें राधा कहते हैं। वैयाकरणों के मत में फल की सिद्धि करने के योग्य पदार्थ को हेतु कहते हैं। जैसे लोक में प्रजाओं के कारण प्रजापति कहे जाते हैं, वैसे ही राधा के कारण माधव कहे जाते हैं। 'मा' नाम राधा, उनके 'धव' पति को माधव कहते हैं। इत्थम्भूतलक्षणे[1]—इस पाणिनि सूत्र के अनुसार **'राधया साकं माधवः नित्यं क्रीडति'** राधया में तृतीया विभक्ति होने से राधा से उपलक्षित नाम-युक्त को माधव कहते हैं। उदाहरण— **जटाभिस्तापसः। जटाज्ञाप्यतापसत्वविशिष्ट इत्यर्थः। तथैव प्रकृते राधयोपलक्षितो माधवः, राधज्ञाप्य-माधवत्वविशिष्ट इत्यर्थः।** अर्थात् जटाओं से तपस्वी का तपस्वीपना मालूम होता है। वैसे राधा-संग ही माधव सत्सेवनीय हैं। राधाजी के बिना केवल माधव के पूजन से सम्मोहनतन्त्र में श्रीमहादेवजी ने पार्वती जी से पाँच प्रकार के दोष बतलाये हैं—

गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत् ।
जपेद् ध्यायते वाऽपि स भवेत् पातकी शिवे ॥
स ब्रह्महा सुरापी च स्वर्णस्तेयी च पंचमः ।
एतैर्दोषैर्विलिप्येत तेजो भेदान्महेश्वरि ॥
तस्माज्ज्योतिरभूद् द्विधा राधामाधवरूपकम् ॥

'हे शिवे ! जो मनुष्य गौरतेज अर्थात् राधाजी के बिना केवल श्यामतेज अर्थात् कृष्ण का अर्चन-जप-ध्यान करता है, वह पातकी है। हे महेश्वरि ! तेज के भेद से वह भेद करने वाला व्यक्ति इन दोषों में लिप्त होता है—

---

(१) पाणिनिमुनिकृता अष्टाध्यायी सू० २/३/२१

ब्रह्मघाती सुरापश्च गोघश्च गुरुतल्पगः ।
स्वर्णापहारी पंचैते महापातकिनः स्मृताः ॥

इस स्मृति के अनुसार ब्राह्मणों को मारनेवाला, शराब पीने वाला, गोओं की हत्या करने वाला, गुरुपत्नी-गामी और सोने को चुराने वाला ये पाँच महापातकी हैं, यहाँ पर दो चकारों से गोघ्न एवं गुरुतल्पग पदद्वय अध्याहार कर लेना चाहिये। निचोड़ यह निकला कि महापातकियों को जो-जो दोष लगते हैं, वे सब दोष राधाकृष्ण में भेद करने वालों को भी लगते हैं; क्योंकि एक ही ज्योति राधा और माधव रूप से दो तरह प्रकट हुई है। यह युग्म-ज्योति वस्तुतः वेदान्त-वेद्य ब्रह्मात्मा ही है; जिससे पंच महाभूतों की सृष्टि हुई। इसकी समीक्षा हम आगे करेंगे। जैसे कि भगवान् भाष्यकार श्रीनिम्बार्काचार्य ने वेदान्तपारिजातसौरभ में कहा है—**ज्योतिर्ब्रह्मैव** ।[१] भागवत लोग ध्यान करते हुए इस युग्म-ज्योति का जाप करते हैं—**ध्यायञ्जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम्** ॥[२] इस राधामाधवरूप सनातन ब्रह्म-ज्योति को वेदों में आत्मा कहते हैं—**तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। अहमात्मा गुडाकेश** ।[३] उस आत्मा (राधाकृष्ण) से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश ये वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी। श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं—हे गुडाकेश! मैं आत्मा हूँ। सम्पूर्ण वेदों से जानने योग्य जो वस्तु है, वह मैं ही हूँ।[४] उपर्युक्त श्रुति की व्याख्या—वे श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलसरकार

---

(१) ब्रह्मसूत्रनिम्बार्कभाष्यम् सू० १/१/२ (२) श्रीमद्भागवतम् ३/१४/३१
(३) श्रीमद्भागवद्गीता १०/२० (४) वही १५/१५। गन्धः पृथिव्यां, रसोऽहमप्सु, तेजश्चामि विभावसौ, पवनः पवतामस्मि, शब्दः रवे। तत्रैव द्रष्टव्यः।

आकाश में शब्द-रूप से रहते हैं। वायु में स्पर्शरूप से, अग्नि में तेजरूप से, जल में रसरूप से, पृथिवी में जल एवं गन्धरूप से विराजते हैं। इन्हीं पाँच महाभूतों से प्राणियों का शरीर बनता है।[१] किन्तु श्रीभगवान् का जन्म त्रिगुणात्मिका माया से अस्पृष्ट नित्य-सिद्ध-चिद्घन-ज्ञानघन-सच्चिदानन्द-विग्रह के साथ अपने से और भक्तों की इच्छा से होता है। पृथिवी के भारभूत अधार्मिकों का विनाश करना श्रीभगवान् का कर्म है।[२] भगवान् श्रीहरि की देह अवतारों में भी शुक्रादि से उत्पन्न नहीं होता, फिर भी शुक्रस्थ होकर मातृदेह में प्रवेश करते हैं। प्रवेशकर शुक्र को वहीं छोड़कर केवल ज्ञानस्वरूप से भगवान् विष्णु (समय-समय पर) प्रकट होते हैं।[३] कृष्ण तो स्वयं भगवान् तथा साक्षात् नारायण हैं।[४] सबका शासन करने वाले नारायण सभी प्राणियों के हृदय में स्थित हैं।

अब कृष्ण शब्द के अर्थ का निरूपण करते हैं–कृष्ण शब्द दो प्रकार का है : एक सखण्डार्थ और दूसरा अखण्डार्थ है। सखण्डार्थ और अखण्डार्थ इन दोनों में से पहले व्याकरण की रीति से सखण्डार्थ कृष्ण शब्द की व्याख्या करते हैं। 'कृष्ण'

---

(१) कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पांचभौतिकः। श्रीमद्भा. १/१३/४५

(२) जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।। श्रीमद्भगवद्गीता ४/९

(३) नावतारेष्वपि हरेर्देहः शुक्रादिसम्भवः।
तथापि शुक्रसंस्थः सन् मातृदेहे प्रविश्य च।।
विलाप्य शुक्रं तत्रैव केवलज्ञानरूपतः।
उदेति भगवान् विष्णुः काले लोकं विडम्बयन्।। (वैष्णवसिद्धान्ते)

(४) कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् श्रीमद्भा०
नारायणस्त्वम् - श्रीमद्भा० १०/१४/१४
अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। गीता १०/२०

यह वाक्य चार पद का है, क्योंकि कृष्ण शब्द में 'कृ' शब्द का तन्त्र से पाठ पढ़ा है, इससे कृ–कृष्–ण–अ ये चार पद सिद्ध हुए हैं। कृ–कृष् इन दोनों पदों की सिद्धि क्रम से 'डु कृञ् करणे' 'कृष् विलेखने' इन धातुओं से 'क्विप्' प्रत्यय करने पर और वैदिक होने से 'कृ' धातु को 'तुक्' का आगम न होने से 'तुक्' के अभाव में 'कृ' शब्द सिद्ध हुआ और उसका दर्शन न होने से केवल 'कृष्' शब्द रह गया और 'कृष्' शब्द के ही जगत् का कर्ता और जगत् का संहर्ता दो अर्थ सिद्ध हुए।

वस्तु का लाभ करने वाला णकार शब्द है। 'अव रक्षणे' इस धातु से 'क्विम्' प्रत्यय करने पर और वैदिक होने से 'ऊठ्' का अभाव वकार का लोप होने से अकार मात्र शेष रहा और 'जगत् के रक्षक' यह भी अर्थ सिद्ध हुआ। इस प्रकार 'कृ' से जगत् के कर्ता, 'कृष्' से जगत् का संहार करने वाला, णकार से मोक्ष के दाता और अकार से जगत् के रक्षक इस प्रकार कृष्ण शब्द का अर्थ सिद्ध हुआ। इसी बात को श्रुति कहती है[१]–जिन भगवान् श्रीपुरुषोत्तम से तृण से लेकर महदादि भूत-प्राणियों की उत्पत्ति होती है, उत्पन्न होकर जिनसे वे जीवित रहते हैं, समस्त कर्मों के बन्धन ध्वंसानन्तर जिनको प्राप्त होते हैं और प्रलय-काल में उन्हीं भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण में जो लीन होते हैं। तन्त्र-शास्त्रों ने और भी स्पष्ट कर दिया है[२]–'कृष' शब्द का

---

(१) व्याख्यात्रयोपेतं ब्रह्मसूत्रनिम्बार्कभाष्यम्।

(२) कृषिर्भूवाचकः शब्दोणश्च निर्वृत्तिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।।१।।
कृष् शब्दश्च सत्तार्थो णश्चानन्दस्वरूपः।
सुखरूपो भवेदात्मा भावानन्दमयस्ततः।।२।।

अर्थ सत्ता, कर्षण–आकर्षण है, और णकार का निर्वृति–सुख–निरतिशय आनन्द अर्थ है। इन दोनों के मिलने से परब्रह्म 'कृष्ण' कहलाता है। कृष शब्द का अर्थ सत्ता और णकार का अर्थ आनन्दस्वरूप है। आत्मा सुखस्वरूप और आनन्दमय है, इसलिये कृष्ण शब्द का अर्थ आनन्दमय परमात्मा है। जैसे भगवान् भाष्यकार श्रीनिम्बार्काचार्य ने कहा है[१]–आर्षव्युत्पत्ति पक्ष में दिखलाते हैं–

सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकर्मणे ।
नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥
सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥

परिश्रम के बिना ही गोवर्द्धन–धारण इत्यादि जिनका कर्म है, जो वेदान्त–शास्त्र द्वारा ज्ञेय हैं, सब के गुरु, बुद्धि के प्रवर्तक सच्चिदानन्द–स्वरूप भगवान् कृष्ण के लिये नमस्कार है। आध्यात्मिकादि तापत्रय विनाशक जगज्जन्मादि कारण और सत्, चित्, आनन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण को हम नमस्कार करते हैं और सत्य–स्वरूप, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण का हम ध्यान करते हैं।

राधापते नन्दतनूज कृष्ण गोविन्द गोपाल मुकुन्द मित्र ।
गोपीश वृन्दावनरासलासिन् जिह्वात् आर्तस्वरतः स्फुर त्वम् ॥

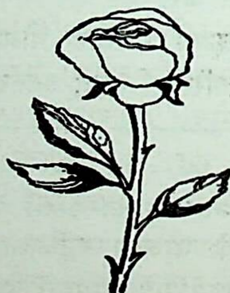
---

(१) आनन्दमयः परमात्मा एव न तु जीवः।
कृष् शब्दः सत्तार्थो णश्चानन्दात्मकस्ततः कृष्णः।
भक्ताघसकर्षणादपि तद्वर्णत्वाच्च मन्त्रमयवपुषः।। – क्रमदीपिका
भक्तों के पापों को हरने वाले कृष्ण वर्णतः शब्दतः अर्थतः स्वरूपतः मन्त्रमय विग्रह हैं।
दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद् वपुः। – श्रीमद्भागवतम्

'हे राधापते ! हे नन्दनन्दन ! हे कृष्ण ! हे गोविन्द ! हे गोपाल ! हे मुकुन्द ! हे मित्र ! हे गोपीश ! हे वृन्दावन की रासलीला के रसिक ! मुझको और कुछ नहीं चाहिये, बस इतनी कृपा कीजिये कि सदा-सर्वदा आर्त स्वर से मेरी जिह्वा आप-ही-आप के मंगलमय नामों का उच्चारण करती रहे-'

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ।
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥
न ज्ञानं न च वैराग्यं न मे भक्तिरकिंचना ।
कालव्यालभयाद् भीतं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥

'हे प्रभो ! आप में मेरी निष्काम-भक्ति नहीं है, ज्ञान और वैराग्य भी नहीं है। मैं मृत्युरूपी कालसर्प के भय से भीत होकर इधर-उधर भटक रहा हूँ, आप इस शरणागत की रक्षा करें।'



भगवान् श्रीपुरुषोत्तम का प्रभाव

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण मार्कण्डेय ऋषि को बतलाते हैं—

अहं नारायणो नाम प्रभवः शाश्वतोऽव्ययः ।
विधाता सर्वभूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम ॥
अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रश्चाहं सुराधिपः ।
अहं वैश्रवणो राजा यमः प्रेताधिपस्तथा ।
अहं त्रिवर्त्मा विश्वात्मा सर्वलोकसुखावहः ।
आविर्भूः सर्वगोऽनन्तः हृषीकेश उरुक्रमः ॥[१]

'हे द्विजोत्तम ! मेरा नाम नारायण है, मैं ही चराचर प्राणियों की उत्पत्ति का कारण हूँ। उपचय और अपचय से शून्य सनातन पुरुष हूँ। सम्पूर्ण भूतों की सृष्टि और संहार करने वाला भी मैं ही हूँ। मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही देवराज इन्द्र हूँ, मैं ही राजा कुबेर हूँ तथा प्रेताधिपति यम हूँ। ब्रह्मण्यैकाग्रणी महाराज बलि के सिर पर तीसरा पैर रखने वाला मैं त्रिवर्त्मा हूँ। मैं सब लोगों को सुख पहुँचानेवाला विश्वात्मा हूँ।'

सा तु साक्षान्महालक्ष्मीः कृष्णो नारायणः स्वयम् ।
नैतयोर्विद्यते भेदः स्वल्पोऽपि मुनिसत्तम् ॥
इयं दुर्गा हरी रुद्रः कृष्णश्शक्र इयं शची ।
सावित्रीयं हरिर्ब्रह्मा धूमोर्णाऽसौ यमो हरिः ॥
देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता ।
सर्वलक्ष्मीस्वरूपा सा कृष्णाह्लादरूपिणी ॥

---

(१) श्रीमन्महाभारतवनपर्व

ततः सा प्रोच्यते विप्र ह्लादिनी मनीषिभिः ।
तत्कला कोटिकोट्यांशदुर्गाद्यंस्त्रिगुणात्मिका ॥[१]

'हे मुनिसत्तम ! भगवती राधा साक्षात् महालक्ष्मी हैं, भगवान् कृष्ण स्वयं नारायण हैं, इन दोनों में थोड़ा सा भी भेद नहीं है। राधा दुर्गा हैं और कृष्ण रुद्र हैं। कृष्ण इन्द्र हैं और राधा शची हैं। कृष्ण ब्रह्मा हैं और राधा सावित्री हैं। राधा धूमोर्णा हैं और कृष्ण यम हैं। परदेवता देवी राधिका कृष्णमयी कही गयी हैं, वह सर्वलक्ष्मी स्वरूपा हैं एवं कृष्ण की आह्लादरूपिणी शक्ति हैं।'

'हे विप्र ! इसलिये मनीषियों ने राधा को ह्लादिनी कहा है। उसके करोड़वें अंश के भी करोड़वें अंश से दुर्गा इत्यादि त्रिगुणात्मिका शक्तियाँ हैं।' उपर्युक्त स्मृतियों को श्रुतिप्रमाण से दृढ़ करते हैं, क्योंकि श्रुति के अर्थ कि पीछे स्मृति चलती है। **श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ।**[२] **पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।**[३] परब्रह्म स्वरूप कृष्ण की राधा परा शक्ति हैं। भगवान् की शक्ति, ज्ञान, बल और क्रिया सब-की-सब स्वाभाविक हैं। भगवान् के सम्पूर्ण गुण-कर्मादिकों को ग्रहण करने के लिये श्रुति में चकार पड़ा है। इससे भगवान् की शक्ति ही परा है, यह बात नहीं है, किन्तु भगवान् के ज्ञान-बल-क्रिया और सम्पूर्ण गुण-कर्मादिक ब्रह्मसूत्रभाष्यकार भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य ने स्वकृत वेदान्तपारिजातसौरभ में कहा है।[४] स्मृतियाँ किस तरह वेद के पीछे चलती हैं और भी देखिये–

(१) पद्मपुराण पातालखण्ड आविर्भवतीति आविर्भूः - अवताररूपः, सर्वंगच्छतीति सर्वगः - सर्वव्यापकः, अनन्तः - देशतः कालतो वस्तुतः परिच्छेदशून्यः। उरुरुत्कृष्टः क्रमः पराक्रमः पादविक्षेपो यस्यासौ उरुक्रमः।

(२) रघुवंशमहाकाव्यम्, द्वितीयः सर्गः (३) श्वेताश्वतरोपनिषद् ६/८

(४) स्वाभाविकस्वरूपगुणशक्त्यादिभिर्बृहत्तमो यो रमाकान्तः पुरुषोत्तमो ब्रह्मशब्दाभिधेयस्तद्विषयिका जिज्ञासा सततं सम्पादनीया। ब्रह्मसूत्रनिम्बार्कभाष्यम् वेदान्तकौस्तुभ-वेदान्तकौस्तुभप्रभा-भावदीपिकाव्याख्यात्रयोपेतम्।

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथाऽपरा ।
अविद्या कर्मसंज्ञाऽन्या तृतीया शक्तिरिष्यते ।।[१]

भगवान् की शक्ति राधा, लक्ष्मी, रुक्मिणी और सीता प्रभृति 'परा-शक्ति' कही जाती हैं और इन दोनों से भिन्न कर्मसंज्ञा नाम्नी 'अविद्या-शक्ति' तीसरी भगवान् की है। इन शक्तियों से वे शक्तिमान् कहलाते हैं।

स्वयं भगवान् कृष्ण भगवती राधा से कहते हैं–

यथा त्वं च तथाऽहं च भेदो हि नावयोर्ध्रुवम् ।
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाऽग्नौ दाहिका शक्तिः ॥
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाऽहं त्वयि सततम् ।[२]

'हे राधे ! जो तुम हो वही मैं हूँ, हम दोनों में कदापि किञ्चिन्मात्र भेद नहीं है। जैसे दुग्ध में शुक्लता, अग्नि में दाहिका शक्ति और पृथिवी में गन्ध सदा विद्यमान रहती है, वैसे ही मैं निरन्तर तुम में हूँ।' भगवान् श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलसरकार की कृपा जीवों पर सदा-सर्वदा है, किन्तु जीव आज संसार की चकाचौंध, सौन्दर्य-प्रसाधन, सुरीला-गला, तत्त्वहीन लच्छेदार भाषण अहन्ता-ममता-कुटुम्बादि भरण-पोषण और घर-गृहस्थी में आसक्ति के कारण सबकुछ भूल बैठे हैं। उनकी कृपा पर ध्यान नहीं देते हैं। रासलीला में भगवान् कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर गोपियाँ कहती हैं–

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ।।[३]

'हे सखे ! आप गोपिका-यशोदानन्दन नहीं हो, आप तो सकल देहधारियों के अन्तरात्मा उनके द्रष्टा-साक्षी हो। ब्रह्मा की

(१) श्रीविष्णुपुराणम्- ६/७/६१ (२) ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड
(३) श्रीमद्भागवतम् १०/३१/४

प्रार्थना पर विश्व की रक्षा के लिए आप यदुकल में प्रकट हुए। आगे गोपियाँ कहती हैं–

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्द-
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहंजुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥[१]

'हे कमलनाभ ! अगाध ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न योगेश्वर तथा ब्रह्मशिवादि अपने हृदय में आप के श्रीचरणकमलों का निरन्तर ध्यान करते हैं और संसार-कूप में पतित-जनों के उद्धार का एकमात्र अवलम्ब (उपाय-साधन) आश्रय है। हम घर में काम करने वाली गोपियों के मन में आपके चरणारविन्द सदा स्मरणीय रहें। मथुरा की स्त्रियाँ भगवान् कृष्ण को देखकर कहती हैं–

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितो क्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रम चित्तयानाः ॥[२]

'व्रज की स्त्रियाँ धन्य हैं, जिनके चित्त के यान (रथ) पर ये उरुक्रम (श्रीकृष्ण) विराजमान रहते हैं। वे गाय दुहते, धान कूटते, दही मथते, रोते बच्चे को झूला झुलाते, घर बुहारी देते, बर्तन मलते सब अवस्थाओं में अनुरक्त चित्त से आँसू बहाते गद्गद कण्ठ से इन सद्गुरु-जगद्गुरु-सर्वसाक्षी भगवान् श्रीकृष्ण का ही गान करती हैं। सारी सृष्टि में वे अव्यक्तमूर्ति से व्याप्त हैं। श्रीमहादेवजी देवर्षि नारद से कहते हैं–

(१) वही १०/८२/४६ (२) श्रीमद्भागवतम् १०/४४/१५

बहुना किं मुनिश्रेष्ठ ! बिना ताभ्यां न किंचन ।
चिदचिल्लक्षणं सर्वं राधाकृष्णमयं जगत् ।।[१]

'हे मुनिश्रेष्ठ ! अधिक क्या कहा जाय, राधाकृष्ण के बिना कुछ भी नहीं है। जड़-चेतन समस्त संसार राधाकृष्णमय है। भगवती श्रुति कहती है–

नेह नानास्ति किञ्चन ।[२] इस जगत् में राधाकृष्ण के बिना कुछ भी नहीं है। उपर्युक्त श्रुति में नाना शब्द बिना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतः **'नेह नानास्ति किंचन'** श्रुति का अर्थ इस प्रकार होगा–इस जगत् में नाना-स्वोपादान राधाकृष्ण के बिना कोई भी वस्तु ही नहीं है। अर्थात् सचराचर जगत् राधाकृष्णमय है। समस्त कार्य ही स्वोपादान का अविनाभूत होने से उपादान बिना कार्य रह नहीं सकता है।[३] बिल्कुल यही बात ही श्रीगीताजी में श्रीभगवान् ने कही है–

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मयाभूतं चराचरम् ।।[४]

हे अर्जुन ! जो समस्त भूतों का बीज है, वह मैं ही हूँ। मेरे बिना चराचर-भूत कुछ भी नहीं है।

---

(१) पद्मपुराणं पातालखण्डः

(२) कठोपनिषद् २/१/११

विनंभ्यां नानान्यौ न सह, पाणिनिमुनिविरचिता अष्टाध्यायी सू. ५/२/२१, तथा च कोशः –
नाना शब्दो विनाऽर्थेऽपि तथाऽनेकोभयार्थयोः, (इति मेदिनी)
अपि च प्रयोगः नाना नारी निष्फला लोकयात्रा।
तथा चैवं योजना-इह जगति नाना-स्वोपादानं राधाकृष्णं विना किंचनापि वस्तु जातं नास्ति।

(३) सर्वकार्यत्वावच्छिन्नस्य स्वोपादानाविनाभूतत्वात् (४) श्रीमद्भागवदगीता १०/३९

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥[१]

'श्रीश्रीराधाकृष्ण का सच्चिदानन्द विग्रह है, वे परमाणु इत्यादि जितने कारण हैं उनके भी कारण हैं। अक्रूरजी ने तीस श्लोकों से भगवान् श्रीकृष्ण के गुणानुवाद सहित उनके विराट् रूप की तथा कतिपय मनोरम अवतारों की स्तुति की है। उनमें पहला श्लोक यह है–

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पुरुषमाद्यमव्ययम् ।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माऽऽविरासीद् यत एष लोकः ॥

'हे भगवन् ! मैं आप को मन, वाणी और शरीर से नमस्कार करता हूँ। परमाणु इत्यादि जितने कारण हैं, उनके भी कारण आप हैं। आप सब के मूल कारण आदिपुरुष अविनाशी नारायण हैं। आप के नाभि-कमल से ब्रह्मा प्रकट हुए, जिससे यह चराचर-भूत उत्पन्न हुआ है। यहाँ अक्रूर जी कितनी बढ़िया एक बहुत ही विलक्षण बात बताते हैं। ऐसा सदुपदेश अन्य शास्त्रीय ग्रंथों में मिलना मुश्किल है। वह यह है–

पुंसो भवेद् यर्हि संसरणापवर्ग-
स्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ।[२]

'हे कमलनाथ ! जब मनुष्य जन्मजरामरणरूप संसार-प्रवाह से छूटने वाला होता है, तब साधु-सन्त-महात्माओं की उपासन-सेवा-शुश्रूषा से उसकी मति आप में लगती है।

---

(१) ब्रह्मसंहिता ५/१, परा -मा- शक्तिर्यस्यासौ परमः राधाकृष्ण इत्यर्थः। पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, इति श्रुतेः। इन्दिरा लोकमाता मा, इत्यमरः।

(२) श्रीमदभागवतम् १०/४०/१, १०/४०/२८

श्रीभगवान् को प्रणाम करने का माहात्म्य बतलाते हैं–

एकोऽपि कृष्णस्य कृतप्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥[1]

इस श्लोक में श्रीभगवान् को मात्र एकबार प्रणाम करने का माहात्म्य दशाश्वमेध–यज्ञ के तुल्य बतलाया है। श्रद्धा–भक्ति–भाव से भगवान् राधाकृष्ण युगल–सरकार को किया गया एक भी प्रणाम दस अश्वमेघ यज्ञों के अवमृथ–स्नान के बराबर होता है। दस अश्वमेघं करने वाला प्राणी भी पुनः जन्म धारण करता है, किन्तु भगवान् राधामुकुन्द को प्रणाम करने वाला मनुष्य फिर जन्म नहीं लेता है। अर्थात् वह जन्म–मरण से रहित हो मुक्त हो जाता है। श्रीमहादेवजी ने बारह श्लोकों द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के विराट् रूप की स्तुति की है, उनमें से ये दो श्लोकं हैं–

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।
यं पश्यन्त्यमलात्मन आकाशमिव केवलम् ॥
तं त्वा जगत्स्थित्युदयान्तहेतु समं प्रशान्तं सुहृदात्मदैवम् ।
अनन्यमेकं जगदात्मकेतं भवापवर्गाय भजाम् देवम् ॥[2]

'हे भगवन् ! आप परब्रह्म हैं, जो ज्योति स्वरूप ब्रह्म वेद–वाणी में छिपा है, वह आप हैं। निर्मलात्मा मुनिजन आकाश के समान व्यापक जिस वस्तु को देखते हैं, वह आप हैं। आप इस दृश्यमान् जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण हैं। आप सम्पूर्ण भूतों में सम हैं, आप में विषमता नहीं है। आप परम शान्त हैं। आप समस्त प्राणियों के निरपेक्ष हितकारी व सुहृद् हैं।

(१) श्रीमन्महाभारत शान्तिपर्व ४०/६१ (२) श्रीमद्भागवतम् १०/६३/३४-४४

आप सब के इष्टदेव हैं। आप के समान तथा आप से बढ़कर कोई दूसरा पुरुष नहीं है। भगवान् संकर्षण देवजी कहते हैं[१]—ब्रह्मा, शिव और मैं भी जिन श्रीकृष्ण के अंश के अंश हैं। हे प्रभो ! आप जगत् के और जीवों के आधार हैं। हम सब संसार से मुक्त होने के लिए आप दोनों का भजन करते हैं।

प. फ. ब. भ. म. ये पवर्ग हैं। इनके प्रतीक् प–से पाप और पुण्य, फ–से फल, ब–से बन्धन, भ–से भेद (स्वकीय-परकीय-भाव) और म–से मोह–माया यह पवर्ग जिसमें नहीं है, वह अपवर्ग–श्रीभगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष है।



(१) श्रीमद्भा० १०/६८/३७

भगवान् श्रीपुरुषोत्तम का माहात्म्य

श्रीकृष्णद्वारा अपने और राधातत्त्व का उद्घाटन–

जात्याऽहं जगतां स्वामी किं रुक्मिण्यादियोषिताम् ।
कार्यकारणरूपोऽहं व्यक्तो राधे पृथक् पृथक् ॥
एकात्माऽहं च विश्वेषां जात्या ज्योतिर्मयः स्वयम् ।
सर्वप्राणिषु व्यक्त्या चाप्याब्रह्मादितृणादिषु ॥
जात्याऽहं कृष्णरूपश्च परिपूर्णतमः स्वयम् ।
गोलोके गोकुले रम्ये क्षेत्रे वृन्दावने वने ॥
द्विभुजो गोपवेषश्च स्वयं राधापतिः शिशुः ।
गोपालैर्गोपिकाभिश्च सहितः कामधेनुभिः ॥
चतुर्भुजोऽपि वैकुण्ठे द्विधारूपः सनातनः ।
लक्ष्मीसरस्वतीकान्तः सततं शान्तविग्रहः ॥
यन्मानसीसिन्धुकन्या मर्त्यलक्ष्मीपतिर्भुवि ।
श्वेतद्वीपे च क्षीरोदे तत्रापि च चुतुर्भुजः ॥
अहं नारायणर्षिश्च नरो धर्मः सनातनः ।
धर्मवक्ता च धर्मिष्ठो धर्मवर्त्मप्रवर्तकः ॥
शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपा च धर्मिष्ठा च पतिव्रता ।
अत्र तस्याः पतिरहं पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥
सिद्धेशः सिद्धिदः साक्षात् कपिलोऽहं सतीपतिः ।
नानारूपधरोऽहं व्यक्तिभेदेन सुन्दरि ॥
अहं चतुर्भुजः शश्वद् द्वार्वत्यां रुक्मिणीपतिः ।
अहं क्षीरोदशायी च सत्यभामागृहे शुभे ॥

अन्यासां मन्दिरेऽहं च कायव्यूहात् पृथक् पृथक् ।
अहं नारायणर्षिश्च फाल्गुनस्य सारथिः ॥
स नरर्षिर्धर्मपुत्रो मदंशो बलवान् भुवि ।
तपसा राधितस्तेन सारथ्येऽहं च पुष्करे ॥
यथा त्वं राधिका देवी गोलोके गोकुले तथा ।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्भवती च सरस्वती ॥
भवती मर्त्यलक्ष्मीश्च शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपिणी ।
कपिलस्य प्रिया कान्ता भारते भारती तथा ॥
त्वं सीता मिथिलायां च त्वच्छाया द्रौपदी सती ।
द्वारवत्यां महालक्ष्मीभवती रुक्मिणी सती ॥
पंचानां पाण्डवानां च भवती कलया प्रिया ।
रावणेन हृता त्वं च त्वं च रामस्य कामनी ॥
नानारूपा यथा त्वं च छायया कलया सती ।
नानारूपस्तथाऽहं च स्वांशेन कलया तथा ॥
परिपूर्णतमोऽहं च परमात्मा परात्परः ।
इति ते कथितं सर्वमाध्यात्मिकमिदं सति ।
राधे सर्वावराधं मे क्षमस्व परमेश्वरि ॥[१]

'हे राधे मैं स्वभाव से सब लोकों का स्वामी हूँ, फिर रुक्मिणी आदि स्त्रियों की तो बात ही क्या है। मैं कार्य-कारण रूप से पृथक्-पृथक् प्रकट होता हूँ। हे राधे ! मैं स्वभाव से स्वयं ज्योतिर्मय हूँ, अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड का एकमात्र आत्मा (अन्तर्यामी) हूँ और ब्रह्मादि से लेकर स्तम्ब-पर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त हूँ। हे राधे ! मैं स्वभाव से स्वयं परिपूर्णतम कृष्णरूप से रहता हुआ रमणीय क्षेत्र गोलोक, गोकुल और

(१) ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णखण्ड

वृन्दावन के वन-वन में तुम्हारे साथ नित्य-विहार करता हूँ। हे राधे ! मैं स्वयं उपर्युक्त इन धामों में तुम्हारा पति द्विभुज होकर गोपवेष में बालक रूप से क्रीड़ा करता हूँ और ग्वाल, गोपियाँ गोएँ ही मेरी लीला में सहायक होती हैं। हे राधे ! मैं वैकुण्ठ में चतुर्भुज रूप से रहता हूँ, वहाँ मैं ही लक्ष्मी और सरस्वती का पति हूँ और सदा शान्त रूप से निवास करता हूँ। इस प्रकार मैं परब्रह्म ही दो रूपों में विभक्त हूँ। हे राधे ! भूतलपर, श्वेतद्वीप और क्षीरसागर में क्रमशः मानसीकन्या, सिन्धुकन्या और मर्त्यलक्ष्मी के जो पति हैं वह भी मैं हूँ और वहाँ मैं चतुर्भुज रूप से रहता हूँ। हे राधे ! मैं नर-नारायण ऋषि हूँ और सनातन धर्म हूँ। मैं धर्मवक्ता हूँ तथा धर्मिष्ठ हूँ और धर्ममार्ग का प्रवर्तक हूँ। हे राधे! इस पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष में जो धर्मिष्ठा तथा पतिव्रता शान्तिस्वरूपा लक्ष्मी है, उसका पति मैं ही हूँ। हे सुन्दरि ! सिद्धेश्वर सिद्धिदाता साक्षात् कपिल मैं ही हूँ। इस प्रकार व्यक्ति-भेद से मैं (कृष्ण) हर तरह का रूप धारण करता हूँ।'

'हे सुन्दरि ! मैं चतुर्भुजरूप धारणकर सदा द्वारका[1] में रुक्मिणी का पति होता हूँ और क्षीरसागर में शयन करने वाला मैं ही सत्यभामा के सुन्दर भवन में निवास करता हूँ। हे राधे ! द्वारका में अन्यान्य रानियों के भवनों में भी मैं ही पृथक्-पृथक् शरीर-धारणकर क्रीड़ा करता हूँ। मैं नारायण इस अर्जुन का सारथि हूँ। हे राधे ! अर्जुन नर-ऋषि है, धर्म का पुत्र है और बलवान् है। मेरे अंश से भूतल पर प्रकट हुआ है। उसने पुष्कर-क्षेत्र में सारथि-कार्य के तप द्वारा मेरी राधना की है। हे राधे !

---

(१) द्वारे द्वारे कं - ब्रह्म यस्यां पूर्यां सा द्वारका। कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति श्रुतेः।

अर्थ – द्वार-द्वार मे 'क' नाम ब्रह्म जिस पुरी में वह द्वारका हैं।

जैसे तुम गोलोक में राधिका देवी हो, उसी तरह गोकुल में भी हो। तुम्हीं वैकुण्ठ में महालक्ष्मी और सरस्वती हो। हे राधे ! क्षीरोदशायी की प्रिया और महालक्ष्मी तुम्हीं हो। भारत में सती तुम हो, भारती तुम्हारा ही नाम है। तुम कपिल की प्यारी पत्नी हो। तुम्हीं मिथिला में सीता नाम से विख्यात हो और सती द्रोपदी तुम्हारी छाया है। हे राधे ! द्वारका में महालक्ष्मी के अंश से प्रकट हुई सती रुक्मिणी के रूप में तुम्हीं निवास करती हो। पाँचों पाण्डवों की पत्नी द्रोपदी तुम्हारी कला से प्रकट हुई है। हे राधे! तुम्हीं दाशरथि रामचन्द्र की भार्या होकर रावण द्वारा हरण की गयी थीं। जैसे तुम अपनी छाया और कला से नानारूपों में सम्पूर्ण विश्व में प्रकट होती हो, वैसे ही मैं भी अपने अंश और कला से अनेक रूपों में व्यक्त होता हूँ। मैं परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा हूँ। हे सती ! हे राधे ! इस प्रकार मैंने तुमको यह सब आध्यात्मिक युग्मतत्त्व का माहात्म्य बता दिया है। अब हे परमेश्वरि ! तुम मेरे सब अपराधों को क्षमा कर दो।

राधाजी की शरण से कृष्ण वश में हो जाते हैं–

सकृदावां प्रपन्नो वा मत्प्रियामेकिका सुत ।
सेवतेऽवन्यभावेन स मामेति न संशयः ॥
यो मामेव प्रपन्नश्च मत्प्रियां न महेश्वर ।
न कदापि स चाप्नोति मामेवं ते मयोदितम् ॥
सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति वदेदपि ।
साधनेन विनाप्येव मामाप्नोति न संशयः ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मत्प्रियां शरणं व्रज ।
आश्रित्य मत्प्रियां रुद्र मां वशीकर्तुमर्हसि ॥

इदं रहस्य परमं मया ते परिकीर्तितम् ।
त्वयाप्येतन्महादेव गोपनीयं प्रयत्नतः ॥
त्वमप्येनां समाश्रित्य राधिकां मम वल्लभाम् ।
जपन् मे युगलं मन्त्रं सदा तिष्ठ मदालये ॥[१]

विश्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसाद से ब्रह्मा और क्रोध से रुद्र उत्पन्न हुए हैं।[२] अतः ये दोनों उनके ही पुत्र हैं। इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–हे पुत्र (शिव) जो प्रपन्न (शरणागत) एक बार हम दोनों की शरण में आ जाता है और आकर मेरी उपासना करता है, वह निस्सन्देह मुझ को प्राप्त हो जाता है। हे महेश्वर ! इसके विपरीत (उल्टा) जो केवल मेरी शरण में आ गया है, पर मेरी प्रिया राधाजी की शरण में नहीं गया, वह कभी भी मुझे प्राप्त नहीं कर सकता है। यह मैंने तुमसे गुह्य बात बताई है। जो प्रपन्न एक बार ही हम दोनों की शरण में आकर "मैं आप दोनों (युगल प्रिया-प्रियतम) का हूँ" यों कह देता है, वह बिना साधन के भी मुझे प्राप्त कर लेता है। इसमें कोई संशय नहीं है। इसलिये हे रुद्र ! तुम सब प्रकार से प्रयत्न करके मेरी प्रिया राधाजी की शरण में जाओ, तुम मेरी प्रिया का सहारा लेकर ही मुझे वश में कर सकते हो। हे महादेव! तुम्हें भी इसको प्रयत्न से गोपन रखना चाहिये। अब तुम मेरी प्रिया राधाजी की शरण लेकर हमारे युगल नाम महामन्त्र का जप करते हुए सदा हमारे आलय-श्रीधाम वृन्दावन में रहो।



---

(१) पद्मपुराण पातालखण्ड (२) श्रीमद्भागवत १२/५/१

राधामाहात्म्य

अब आप लोग ध्यान से श्रीमहादेवजी के मुखारबिन्द से राधांमाहात्म्य सुनिये—श्रीमहादेव उवाच :-

श्रीकृष्णोरसि या राधा यद्वामांशेन सम्भवा ।
महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे सा च नारायणोरसि ॥
सरस्वती सा च देवी विदुषां जननी परा ।
क्षीरोदसिन्धुकन्या सा विष्णूरसि च मायया ॥
सावित्री ब्रह्मणो लोके ब्रह्मवक्षःस्थले स्थिता ।
पुरा सुराणां तेजस्सु साऽऽविर्भूता दया हरेः ॥
स्वयं मूर्तिमती भूत्वा जघान दैत्यसंघकान् ।
ददौ राज्यं महेन्द्राय कृत्वा निष्कण्टकं पदम् ॥
कालेन सा भगवती विष्णुमाया सनातनी ।
बभूव दक्षकन्या च परं कृष्णाज्ञया मुने ॥
त्यक्त्वा देहं पितुर्यज्ञे ममैव निन्दया मुने ।
पितृणां मानसीकन्या मेनाकन्या बभूव सा ॥
आविर्भूता पर्वते सा तेनेयं पार्वती सती ।
सर्वशक्तिस्वरूपा सा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥[१]

श्रीमहादेवजी ने कहा—हे नारद ! भगवान् श्रीकृष्ण के वाम भाग में विराजमाना जो राधा उनके वक्षःस्थल पर निवास करती हैं, वही वैकुण्ठ में महालक्ष्मी होकर नारायण के वक्षःस्थल पर निवास कर रही हैं। वही पुनः विद्वानों की माता सरस्वती हैं।

---

(१) नारदपञ्चरात्र द्वितीयरात्र षष्ठ अध्याय

वह मायाद्वारा क्षीर-समुद्र की कन्या होकर विष्णु के वक्षःस्थल पर निवास कर रही हैं। प्राचीन काल में उन्हींने भगवान् श्रीहरि की दया से समस्त देवताओं के तेजों से स्वयं मूर्तिमती होकर दैत्यों का संहार कर इन्द्र को निष्कंटक राज्य 'इन्द्रपद' प्रदान किया। बहुत समय बीतने पर उसी सनातनी भगवती विष्णुमाया ने भगवान् कृष्ण के आदेश से दक्ष की कन्या के रूप में जन्म लिया, पीछे मेरी निन्दा सुनकर पिता के यज्ञ में शरीर छोड़कर पितृगण की मानसीकन्या और हिमालय की पत्नी मेना की कन्या होकर जन्म लिया था। वही राधा पर्वत से प्रकट हुई थीं, इसलिए उन्हें पार्वती नाम से कहा जाता है। वही राधा दुर्गति का विनाश करनेवाली सर्वशक्तिस्वरूपा माँ दुर्गा हैं। मैत्रेय जी कहते हैं—हे विदुरजी ! सुना है कि दक्ष-कन्या सतीजी ने इस प्रकार अपना पूर्वशरीर त्यागकर हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ से जन्म लिया था।[१] उपर्युक्त शास्त्र-वचनों से यह सिद्ध हो गया कि सप्तशती चण्डी की प्रतिपाद्य देवी भगवती राधाजी हैं।



(१) श्रीमद्भागवत ४/७/५८

श्रीभगवत्प्राप्ति के साधन

जब तक चित्त द्रवित नहीं होता, तब तक उपासक में व्याकुलता नहीं हो सकती, इसलिये हृदय में श्रीभगवत्प्राप्ति के लिये व्याकुलता (आर्ति) होनी चाहिये। जैसे पंखहीन पक्षियों के बच्चे अपनी माँ की राह देखते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँ का दूध पीने को आतुर रहते हैं एवं जैसे वियोगिनी पत्नी (प्रिया) प्रवासस्थित अपने प्रियतम से मिलने के लिए उत्कण्ठित-व्याकुल रहती है, वैसे ही उपासक का मन-चित्त अपने उपास्य के दर्शन के लिए व्याकुल होना चाहिये। मनुष्य को केवल एकमात्र श्रीभगवान् की ही शरण में जाना चाहिये। जिन्होंने गीता के उपदेश से अर्जुन की कुमति का हरणकर उससे क्षत्रिय-धर्म का पालन कराया, उन्हीं की शरण में जाना चाहिये।[1] सभी प्राणियों में श्रीभगवद्दृष्टि रखते हुए अहंकार का परित्याग कर अनन्यभाव से श्रीभगवान् की शरण में चला जाना ही आर्य-ऋषियों ने श्रीभगवत्प्राप्ति का साधन या उपाय बताया है। श्रीभगवान् की शरणागतवत्सलता प्रसिद्ध है। उनकी यह घोषणा है–

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।।[2]

---

(१) मामेकं शरणं व्रज श्रीमदभगवद्गीता १८/६६
शरणं साधनं विदुः प्रपन्नकल्पवल्ली श्लोक २
(२) श्रीमद्वाल्मकीयरामायणं युद्धकाण्डः १८/३३

अर्थात् जो एक बार ही मेरी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझ से अभय चाहता है, मैं उस प्रपन्न को सब भूतों से अभयदान दे देता हूँ, यह मेरा व्रत है।

सकृत् तवाहमित्यवं वादिनेऽपि निजात्मदः ।
अत्यन्तापारकारुण्यः श्रीकृष्णः शरणं मम ॥[1]

जो एक बार भगवान् श्रीहरि की शरण में जाकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहने वाले को भी जो अपना स्वरूप प्रदान कर देते हैं, वे अत्यन्त अपार करुणामूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरे आश्रयस्थान हैं। एक बात सब कान खोलकर सुन लें-पुस्तकों के आधार पर क्रिया न करें, अपने गुरु से सीखकर क्रिया करें। यह बात पुराणस्मृतिश्रुति स्वयं ही कहती है–

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् ।[2]
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥[3]
तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥
तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः ।
अमाययाऽनुवृत्या यैस्तुष्येदात्माऽऽत्मदो हरिः ॥[4]

अर्थात् जिज्ञासु पुरुष तत्त्वज्ञान-लाभ के निमित्त श्रीगुरुदेव की ही शरण में जायँ। हे अर्जुन ! तुम्हें तत्वदर्शी एवं तत्वज्ञान का उपदेश करेंगे। सर्वप्रथमं सेवा, प्रणिपात एवं परिप्रश्न करके उस तत्व को तुम समझना। जो सम्यक्, शान्त, उपशमावलम्बी, शब्दब्रह्म और परब्रह्म में निष्णात हों। वहाँ उनकी निष्कपट भाव से सेवाकर भागवत-धर्मों को सीखे, जिनके द्वारा सर्वात्मा भगवान्

(१) श्रीकृष्णशरणापत्तिस्तोत्रम् श्लोक २० (२) मुण्डकोपनिषद् १/२/११
(३) श्रीमदभगवदगीता ४/३४ (४) श्रीमदभागवत ११/३/२१-२२

श्रीमन्मुकुन्द तुष्ट हों। ब्रह्मज्ञानी जड़भरत ने राजा रहूगण को उपदेश देते हुए कहा है–

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।
न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ।।[१]

'हे रहूगण ! यह तत्त्वज्ञान न तपस्या से प्राप्त होता है, न यज्ञ करने से, न घर–द्वार का परित्याग करने से, न वेदाध्ययन करने से और न जल, अग्नि सूर्यादि देवताओं की आराधना से प्राप्त होता है, गुरु की सेवा बिना यह प्राप्त नहीं हो सकता है।'

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ।
गृहेषु खगवत् सक्तः तमारूढच्युतं विदुः ।।[२]

'जो मनुष्य मुक्ति का खुला द्वार इस मानव शरीर को पाकर गृहस्थाश्रम में कबूतर के समान आसक्त रहता है, वह मुक्तिपद पर आरूढ़ होकर भी नीचे गिर गया, ऐसा समझना चाहिये।' श्रीभगवान् महाभागवत उद्धवजी से कहते हैं–

नृहदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयाऽनुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ।।[३]

'हे उद्धव ! यह मनुष्य शरीर अत्यन्त दुर्लभ दृढ़ नौका के समान है। मेरी कृपा से यह सुलभ है। श्रीगुरुदेव इसके मल्लाह हैं। मैं (कृष्ण) स्मरण मात्र से ही अनुकूल वायुरूप होकर नाव को आगे बढ़ाने में सहायता करता हूँ। इसलिए यह शरीररूपी नाव इस संसाररूपी समुद्र को पार करने में समर्थ है। ऐसी सुन्दर नौका को पाकर भी जो मनुष्य संसाररूपी सागर को पार नहीं किया, वह आत्मघाती कहलाता है।' गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं–

---

(१) वही ५/१२/१२ (२) वही ११/७/७४ (३) श्रीमदभागवतं ११/२०/१७

जो न तरे भव सागर, नर समाज अस पाइ ।
सो कृतनिन्दक मन्दमति, आत्माहन गति जाइ ॥

x x x

यावत्स्वस्थमिदं शरीररुजं यावज्जरा दूरतो ।
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः ॥
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् ।
सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥[१]

'जब तक शरीर स्वस्थ हो, रोग का आक्रमण न हुआ हो, वृद्धावस्था न आयी हो, जब तक इन्द्रियों की शक्तियाँ नष्ट नहीं हुई हों, आयु क्षीणप्राय न हुई हो, तब तक विवेकी पुरुष को अपनी आत्मा के उद्धारार्थ शीघ्र प्रयत्न कर लेना चाहिये। अन्यथा घर में आग लगने पर कुआँ खोदन से कोई लाभ नहीं होता है। अतः शीघ्र ही श्रीगुरुदेव की शरण में जाकर श्रीभगवत्प्राप्ति के लिए महान् प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्य का यह दुर्लभ शरीर शूकर-कूकर के समान विषय-भोग के लिए नहीं है, किन्तु यह शरीर श्रीभगवत्प्राप्ति के लिये ही मिला है।'

मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ।[२]

'हे कुन्ती-पुत्र अर्जुन ! मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर अधम गति को प्राप्त होते हैं।' हमारे प्राचीन महामान्य भक्तों की उद्घोषणा एवं सद्भावना को सभी जनगण ध्यान से सुनें-

स्वत्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥[३]

---

(१) गरुड़पुराण १३/१५ (२) श्रीमदभागवद्दगीता १६/२०
(३) श्रीमद्भागवत ५/१८/६

सा वाग् यया तस्य गुणान् गृणीते
करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ।
स्मरेद् वसन्तं स्थिरजंगमेषु
शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ।।
शिरस्तु तस्योभलिंगमानमेत्
तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः ।
अंगानि विष्णोरथ तज्जनानां
पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ।।[१]

पूर्वोक्त एवं श्रीमद्भागवत के इन पद्य-रत्नों को हमेशा स्मरण रखते हुए जीवन में ठीक वैसा ही आचरण करना चाहिए, बस यही श्रीभगवत्प्राप्ति के मुख्य साधन हैं। विश्व का कल्याण हो, दुर्जन, खल खलता को त्याग दें, सकल प्राणी परस्पर सद्बुद्धि से मंगल ही चिन्तन करें और हमारा मन सन्मार्ग में प्रवृत्त हो एवं हम सब की वितृष्णा-मति भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में लगे। वाणी वही है जो श्रीकृष्ण का गुणानुवाद करे, हाथ वही हैं जो उनकी सेवा में संलग्न रहें, मन वही है जो स्थावर-जंगम प्राणियों मे स्थित भगवान् श्रीश्रीराधाकृष्ण युग्मतत्त्व का चिन्तन करे। कान वही हैं जो उनकी पुण्यमयी कथा का श्रवण करें, सिर वही है जो भगवान् श्रीश्रीराधाकृष्ण को और उनके भक्तों को नमन करे, नेत्र वही हैं जो सब जगह श्री श्रीराधाकृष्ण जुगल-जोड़ी का और उनके भक्तों का दर्शन करते रहें, अंग वही हैं जो श्रीभगवान् का और श्रीभगवज्जनों के चरणोदक को सिर पर धारण करते हैं।



---

(१) वही १०/८०/३-४

ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) धारण-विधि

निम्बार्क-सम्प्रदाय का तिलक-स्वरूप यजुर्वेद की हिरण्य-केशिशाखा में प्रतिपादित है। यथा-

हरेः पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्ये छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स पुण्यभाग्भवति स मुक्तिभाग्भवति। अर्थ-भगवान् श्रीहरि के पैर की आकृति (आकार) के समान अपने हित के लिए मध्य में छिद्र (श्यामश्री-बिन्दी) ऊर्ध्व-पुण्ड्र जो धारण करता है, वह परमात्मा का प्रिय होता है, वह पुण्यभागी होता है और वह मुक्ति का हिस्सेदार हो जाता है। इस वेदमन्त्र का भाष्य-व्याख्यान श्रीहरिव्यासदेवाचार्यप्रणीत **"सिद्धान्त-रत्नाञ्जलि"** नामक पुस्तक में देखें :-

यागो दानतपश्चर्या जपहोमादिकं च यत् ।
वृथा भवति तत्सर्वं ऊर्ध्वपुण्ड्रं बिना कृतम् ॥
श्राद्धं होमस्तथा दानं स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
भस्मी भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥

ऊर्ध्व-पुण्ड्र बिना धारण किये यज्ञ, दान, जप, तप और होमादि सब व्यर्थ होते हैं। (पद्मपुराण) श्राद्ध, होम, दान, स्वाध्याय और पितृतर्पण बिना ऊर्ध्व-पुण्ड्र-धारण किये व्यर्थ हो जाते हैं। (वृद्धहारीत) पद्मपुराण में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है-

मत्प्रियार्थं शुभार्थं वा रक्षार्थं चतुरानन ।
मत्पूजाहोमकाले तु सायं प्रातः समाहितः ।
मद्भक्तो धारयेन्नित्यं ऊर्ध्वपुण्ड्रं भयापहम् ॥

'हे चतुरानन ! मेरे प्रिय के लिये, शुभ के लिये अथवा अपनी रक्षा के लिए मेरी पूजा तथा होम-काल में सायं और प्रातःकाल समाहित होकर मेरा भक्त भय को दूर करने वाला ऊर्ध्व-पुण्ड्र (तिलक) नित्य धारण करे। गरुड़-पुराण में देवर्षि नारदजी के वचन इस प्रकार हैं–

गोपीचन्दनसम्भवं सुरुचिरं पुण्ड्रं ललाटे यदि ।
नित्यं धारयेद् द्विजः प्रतिदिनं रात्रौ दिवा सर्वदा ॥

'गोपीचन्दन से बना हुआ सुन्दर ऊर्ध्व पुण्ड्र द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) प्रतिदिन दिवा-रात्रि सर्वदा धारण करें।'

ये लग्नकण्ठतुलसीनलिनाक्षमालाः
ये बाहुमूलपरिचिह्नितशंखचक्राः ।
ये वा ललाटपटले लसदूर्ध्वपुण्ड्राः
ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥

'जिनके कण्ठ में सतत सुन्दर तुलसी-माला अक्ष के समान चमक रही है, जिनके बाहुमूल शंखचक्रादि से चिह्नित हैं, जिनके ललाट पर गोपीचन्दन का ऊर्ध्व-पुण्ड्र तिलक है, वे वैष्णव संसार को शीघ्र ही पवित्र कर देते हैं।'

धृतोर्ध्वपुण्ड्रकृतचक्रधारी
विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा ।
स्वरेण मन्त्रेण सदा हृदिस्थं
परात्परं यन्महतो महान्तम् ॥

'जो महात्मा ऊर्ध्व-पुण्ड्र (तिलक) तथा शंख-चक्र को धारण कर ओंकार सहित भगवन्मंत्र जपते हुए हृदय में स्थित ईश्वर का ध्यान करता है, वह सब से महान् श्रीविष्णु को प्राप्त

कर लेता है।' तप्तमुद्रा का उद्धार करने वाले, तप्तांक को स्थापन करने वाले, तप्त-संस्कार को धारण करने वाले भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य हैं—श्रीनिम्बार्क-सहस्रनामस्तोत्र श्लोक १३४। अनन्यचित्त से श्रीभगवद्भक्ति करने वाले वैष्णवजनों के लिए ये पाँच प्रकार के वैष्णव-संस्कार कहे गये हैं—

विहिताः पंचसंस्काराः युक्तस्यानन्यचेतसः ।
तापपुण्ड्रस्तथा नाम मन्त्रो यागश्च पंचमः ।
अमी हि पञ्चसंस्काराः पारमैकान्त्यहेतवः ॥

१. **ताप**- भगवान् श्रीविष्णु के आयुधाभूत शंखचक्रादि तप्तमुद्रा धारण करना।

२. **ऊर्ध्वपुण्ड्र**- ललाट-पटलादि अंगों में द्वादश तिलक धारण करना।

३. **नाम**- वैष्णवसम्प्रदायानुसार रखना।

४. **मन्त्र**- अपनी सम्प्रदाय-परम्परा से प्राप्त अष्टादशाक्षरादि मन्त्र से दीक्षित होना।

५. **याग**- भगवान् श्रीविष्णु के अर्चावतार शालग्रामादि का नियम पूर्वक पूजन करना।

तापादिपञ्चसंस्कारी मंत्ररत्नार्थतत्त्ववित् ।
वैष्णवः स जगत्पूज्यो याति विष्णोः परं पदम् ॥

'तापादि पञ्च संस्कारों से युक्त मंत्ररत्न के तात्पर्य को यथार्थरूप से जानने वाला वह जगत्पूज्य वैष्णव भगवान् श्रीविष्णु के परम पद (धाम) को प्राप्त कर लेता है।' इस प्रकार निम्बार्क-शास्त्र में पञ्च-संस्कारों का विधि-विधान कहा गया है। ये पञ्चसंस्कार प्रेमलक्षणा-भक्ति के कारण हैं। उपर्युक्त पाँच

मैंने अपने शोध-प्रबन्ध में श्रीनिम्बार्क भगवान् का प्रामाणिक देश, काल, कृति और इतिवृत्त का विवेचन किया है। विशेष जिज्ञासु जन **'श्रीमद्भागवते निम्बार्क-वेदान्तस्य समन्वयः हिन्दी भाषानुवादसहितः'** इस पुस्तक को खरीद कर पढ़ें। यह एक ऐसी पुस्तक है जिसमें दार्शनिक सिद्धान्तों का अन्वेषणपूर्वक तत्त्वविवेचन एवं अपूर्व समन्वय है। इसलिये यह पुस्तक सब के लिए अत्यन्त उपादेय एवं संग्रहणीय है।



शालग्राम-पूजन-माहात्म्य

कामासक्तोऽपि क्रुद्धोऽपि शालग्रामशिलार्चनम् ।
भक्त्या वा यदि वाऽभक्त्या कृत्वा स मुक्तिं प्राप्नुयात् ॥
लिंगकोटिसहस्रैस्तु पूजितैर्यत्फलं भवेत् ।
तत्फलं कोटिगुणितं शालग्रामशिलार्चनात् ॥
शालग्रामशिलाग्रे तु ये कुर्वन्ति सुरार्चनम् ।
तत्र दानं च होमं च सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥

कामी हो अथवा क्रोधी हो, भक्तिपूर्वक अथवा भक्तिरहित व्यक्ति भी अगर शालग्राम शिला का पूजन करता है, वह मुक्ति प्राप्त करता है। करोड़ों लिंगों के पूजन से जो फल प्राप्त होता है, उसका करोड़ों गुणा फल शालग्राम-शिला का पूजन से प्राप्त होता है। शालग्राम-शिला के आगे जो देवपूजन, दान तथा होमादि करते हैं, उनको करोड़ों गुणा फल प्राप्त होता है। यह लिंग-पुराण का वचन है। बृहन्नारदीय में लिखा है–

शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः ।
न बाधते ग्रहास्तत्र भूतवैतालकादयः ॥
शालग्रामशिला यत्र तत्र तीर्थं तपोवनम् ।
यतः सन्निहितस्तत्र भगवान् मधुसूदनः ॥

जहाँ शालग्रामशिला रूपी केशव निवास करते हैं, वहाँ बुरे ग्रह, भूत और बैतालादि की बाधा नहीं रहती। शालग्राम शिला जहाँ रहती है, वहाँ भगवान् मधुसूदन के साथ सब तीर्थ और तपोवन रहते हैं। पद्मपुराण में लिखा है–

तुलसीप्रणाम-मन्त्रः

या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुष्पावनी
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्ताऽन्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः॥

जो तुलसीमाता दर्शनमात्र से समस्त पाप-ताप-समूहों का शमन करती हैं, स्पर्श करने से शरीर को पवित्र करती हैं, प्रणाम करने से रोगों को दूर करती हैं, जल से सिंचन करने से यम के त्रास से अर्थात् नारकी यातना से बचाती हैं, मिट्टी में संरोपण करने से सांसारिक-विषयिणी प्रत्यासक्ति को छुड़ा देती हैं और भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में अर्पण करने से विमुक्ति प्रदान करती हैं, मैं उन तुलसीमाता को प्रणाम करता हूँ॥

श्रीभगवान् **"स्तवप्रिय"** हैं। अतः ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर भगवान् श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगलसरकार का स्तवन करना चाहिये। क्रम यह है कि पहले श्रीमज्जगद्गुरुनिम्बार्काचार्य-प्रणीत प्रातः स्तव, फिर श्रुत्युक्तश्रीकृष्णस्तोत्र और सायंकाल श्रीगोविन्दस्तोत्र सुनाना चाहिये। श्रीभगवान् ने स्वयं कहा है—प्राचीन आर्य ऋषियों के द्वारा अथवा पौराणिक भक्तों के द्वारा बनाये हुए छोटे-बड़े स्तव तथा स्तोत्र से मेरी स्तुति करके प्रार्थना करे, हे भगवन्! आप मुझ पर प्रसन्न हों, तदनन्तर साष्टांग-दण्डवत् प्रणाम करे। (श्रीमद्भा. ११/२७/४५)

श्रीमज्जगद्गुरु भगवान् निम्बार्काचार्य ने प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता) के साररूप सूत्रात्मक वेदान्तकामधेनु (दशश्लोकी) प्रणयन कर श्रीमन्महर्षि सनकादि-चतुस्सन (भगवान् सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) अपने परमगुरु और गुरु श्रीमन्नारद के मत को उद्धृत करते हुए-**'नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्'** एवं **'अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा'** इत्यादि घोषणा के द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि भगवान् श्रीश्रीराधाकृष्ण युग्मतत्त्वका ही स्तवन करना चाहिये, ध्यान करना चाहिये, उन्हीं की उपासना करनी चाहिये और उन्हीं का युगल-नाम-महामंत्र निरन्तर जपना चाहिये, यही सब शास्त्रों का सार है। तदुपरान्त श्रीनिम्बार्क भगवान् ने **'रसो वै सः'** इस श्रुतिवाक्य का विस्तार प्रात:स्तव में करके दिखलाया है। इस प्रात:स्तव में दस श्लोक हैं।

श्रीनिम्बार्क भगवान् ने सूर्यपुत्री यमुनाजी द्वारा परिवेष्टित श्रीधााम वृन्दावन में विराजित श्रीश्रीराधााकृष्ण युग्मतत्त्व के स्मरण से पूर्व ही वृन्दावन का स्मरण करते हुए कहा है-

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यप्रणीत प्रातः स्तवः

प्रातः स्मरामि युगकेलिरसाभिषिक्तं,
वृन्दावनं सुरमणीयमुदारवृक्षम् ।
सौरीप्रवाहवृतमात्मगुणप्रकाशं
युग्मांघ्रिरेणुकणिकाञ्चितसर्वसत्त्वम् ॥१॥

अर्थ - वृन्दावन नित्ययुगलकिशोर श्रीनन्दनन्दन और श्रीवृषभानुनन्दिनी के युगल क्रीड़ारस से सदा अभिषिक्त है, यमुना-जलप्रवाह से चारों ओर घिरा हुआ है, यहाँ के वृक्ष बड़े

अन्योन्यकेलिरसचिह्नचमत्कृतांगं
सख्यावृतं सुरतकाममनोहरं च ॥३॥

अर्थ- श्रीनिम्बार्क भगवान् कहते हैं : ये राधा राजराजेश्वरी हैं और कृष्ण राजराजेश्वर हैं, निरतिशय अविनाशी परमसुख को देने वाले हैं, स्थावर-जंगमात्मक समस्त प्राणियों के ईश्वर हैं। श्रीरंगदेवी, ललिता विशाखादि सखी-परिवेष्टित ये युगलसरकार पारस्परिक केलिरस-चिह्नों से सखियों के नयन कुसुम-समूहों को अपूर्व सौख्य एवं परमानन्द प्रदान कर रहे हैं। जो सुन्दर रतिक्रीड़ाओं द्वारा मन्मथ (कामदेव) के मन को हरने वाले हैं, ऐसे नींद से उठे हुए भगवान् श्रीश्रीराधाकृष्ण के युग्मरूप का मैं प्रात:काल भजन करता हूँ।।३।।

विशेष– गोपियों को श्रीराधागोविन्द के दर्शन से परमानन्द प्राप्त होता था और उन्हें देखे बगैर एक क्षण सैकड़ों युगों के समान लगता था। नन्दबाबा के व्रज में रहने वाली इन सखियों की चरणधूलि की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ, जिनके द्वारा गायी गयी हरिकथा त्रिभुवन को पवित्र करती है। (श्रीमद्भा. १०/१९/१६;१०/४७/६३)

प्रातर्भजे सुरतसारपयोधिचिह्नं
गण्डस्थलेन नयनेन च सन्दधानौ ।
रत्याद्यशेषशुभदौ समुपेत कामौ
श्रीराधिकावरपुरन्दरपुण्यपुञ्जौ ॥४॥

अर्थ- सुरत-सम्बन्धी अंतरंग दिव्यलीलाओं के समालिंगन-चुम्बन, दिव्य अंगों का स्पर्श, दिव्यशृंगार-हार-रस- सौन्दर्य-वारिधि -ललितलीला-विलास-चिह्नों को कपोलस्थल एवं नेत्रों पर सम्यक् धारण किये हुए रति-प्रीति-प्रेम-भावभक्ति-मोक्षादि सकल शुभ

वस्तुओं को देने वाले एवं पूर्ण-काम, नन्दवृषभानु के पुण्यपुंज रससागर भगवान् श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलसरकार का मैं प्रातःकाल भजन करता हूँ।।४।।

विशेष– भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–मेरी आराधना-उपासना को अत्यन्त कठिन समझकर लोग दूसरों को भजते हैं। (श्रीमद्भा. १०/८८/१०) हे अर्जुन ! दुष्कर्म करने वाले अधम-नीच-मूढ़-मूर्ख मनुष्य मेरी शरण में नहीं आते हैं (श्रीमद्गी. ७/१५) इसलिये इस ग्रंथ के मंगलाचरण में कहा गया है– **कृष्णवर्णं त्वषाऽकृष्णं.........यज्ञैः युमेधसः यजन्ति।**

श्रीनिम्बार्क भगवान् इस श्लोक में श्रीश्रीराधाकृष्ण के युगलस्वरूप को अपने हृदय में धारण करते हुए कहते हैं–

प्रातर्धरामि हृदयेन हृदीक्षणीयं
युग्मस्वरूपमनिशं सुमनोहरं च ।
लावण्यधामललनाभिरूपेयमान-
मुत्थाप्यमानमनुमेयमशेषवेषैः ॥५॥

अर्थ- ये श्रीश्रीराधाकृष्ण जुगल सौन्दर्य के सागर हैं, व्रजवनिताओं द्वारा सम्प्राप्य एवं संसेव्य हैं तथा समग्र नाम-रूप रचनाओं द्वारा अनुमान करने योग्य हैं, इनके युग्मस्वरूप का अपने हृदय में निरन्तर निरीक्षण (धारण) करना चाहिये। युग्मस्वरूप को मैं अपने हृदय में प्रातःकाल अनवरत धारण किये रहता हूँ।।५।।

विशेष– जीवनपर्यन्त जो निरन्तर श्रीश्रीराधाकृष्ण जुगल जोड़ी को अपने हृदय में धारण करता है, उसका मन, उसकी वाणी और इन्द्रियाँ कभी असत् मार्ग में नहीं जातीं और न मिथ्या निर्णय ही करती हैं। श्रीमद्भागवत (२/६/३३) में भी एक भक्त

प्रातर्नमामि युगलांघ्रिसरोजकोश-
मष्टांगयुक्तवपुषा भवदुःखदारम् ।
वृन्दावने सुविचरन्तमुदारचिह्नं
लक्ष्म्या उरोजधृतकुंकुमरागपुष्टम् ।।७।।

अर्थ– परमाह्लादिनी पराशक्ति श्रीराधाजी द्वारा निज वक्षःस्थलपर धारण किये कुंकुमरागादि से सम्पन्न, संसार दुःख-विध्वंसकारी वृन्दावनविहारी परमकारुणिक भगवान् श्रीकृष्ण के युगलचरणाविन्दों को मैं अपने आठों अंगों से प्रातःकाल नमन करता हूँ।।७।।

विशेष– साष्टांग-दण्डवत् प्रणाम करने की विधि इस प्रकार है–

दोर्भ्यां पदाभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा ।
मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टांग ईरितः ।।

इस श्लोक का अर्थानुसंधान करना चाहिये। दोनों हाथों को जोड़कर, दोनों पैरों को लम्बा पसार कर, दोनों जानु को वक्ष और सिर (मस्तक) को भूमिपर रखकर दण्ड की तरह पड़ जाय। सर्वांग-समर्पण से अभिमान का परित्याग हो जाता है। मन, वाणी, बुद्धि, दृष्टि शरीर सब-के-सब श्रीभगवान् में लगाकर उनका स्तवन करना, उसके बाद भुजा, पैर, जानु, उर, सिर, नेत्र मन और वाणी से श्रीगुरुगोविन्द के सामने भूमि पर दण्डाकार रूप में पड़ जाय, यही अष्टांग प्रणाम कहलाता है। श्रीमद्भागवत में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करने का निदेश मिलता है–

ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी ।
दृष्टोत्थायादरेणोच्चैर्ननामांगेन दण्डवत् ।।

महर्षिः श्रीमन्मार्कण्डेयः अंगेन साष्टांगेन नरनारायणौ ननाम इत्यर्थः।

अब इस अष्टम श्लोक में सर्वकामवरेश्वरी देवी श्रीराधाजी को प्रणाम करते हैं—

प्रातर्नमामि वृषभानुसुतापदाब्जं
नेत्रालिभिः परिणुतं व्रजसुन्दरीणाम् ।
प्रेमातुरेण हरिणा सुविशारदेन
श्रीमद्व्रजेशतनयेन सदाऽभिवन्द्यम् ।

अर्थ— व्रजसुन्दरियों के भ्रमररूपी नेत्र-समूहों द्वारा सदा परिसेवित, सर्वविद्याविशारद तथा सर्वविद्याप्रवर्तक प्रेमाकुल व्रजराजतनय श्रीहरि द्वारा सदा अभिवन्दित वृषभानुतनया के उन श्रीचरणकमलों को मैं प्रातःकाल नमन करता हूँ।।८।।

विशेष—पीछे श्रीनिम्बार्क भगवान् ने कहा है—
'ललनाञ्चितवामभागम्' और यहाँ कहते हैं—
श्रीमद्व्रजेशतनयेन वृषभानुसुताब्जं सदा अभिवन्द्यम् ।

दोनों में समान रूप गुणादि होने से दोनों का परस्पर आराध्य-आराधकभाव, उपास्य-उपासकभाव है। जैसे हमारे पुराणाचार्यों ने कहा है—

राधा भजति श्रीकृष्णं स च तां च परस्परम् ।
उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च ॥
यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परः ॥

श्रीराधा श्रीकृष्ण की आराधना करती हैं और श्रीकृष्ण श्रीराधा की आराधना करते हैं। दोनों में सर्वसाम्य है, ऐसा सन्त कहते हैं। जैसे श्रीकृष्ण प्रकृति से परे हैं और ब्रह्मस्वरूप हैं, वैसे ही श्रीराधाजी विकाररूपा प्रकृति से परे ब्रह्मस्वरूपा हैं। इसलिये भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य ने श्रीराधाजी के सहित श्रीकृष्ण का

ध्यान करने का उपदेश किया है और उन्होंने स्वकृत 'वेदान्तकामधेनु' (दशश्लोकी) नामक ग्रंथ में श्रीश्रीराधाकृष्ण का साक्षात् ब्रह्मस्वरूप में ध्यान किया है–

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम् ।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् ॥
अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ॥

अर्थात् जो स्वभावतः ही अविद्यादि समस्त दोषों से रहित हैं, जो अनन्त–असंख्य–अप्राकृत–कल्याणात्मक दिव्य गुणों की एकमात्र निधि हैं, जिनके वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चार अंग हैं, जो सब के वरेण्य हैं और जिनके कमल के समान मनोहर नेत्र हैं, जो स्मरणमात्र से ही आश्रित जनों के समस्त अमंगलों व पाप–तापों को हरने वाले हैं, हम उन ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण का ध्यान करते हैं। उनके वामांग में वृषभानुतनया निरतिशय प्रेमानन्द से सदा विराजती हैं, वे श्रीकृष्ण के समान सौन्दर्यादि गुणों से युक्त हैं और उनकी सेवा में सहस्रों सखियाँ समुपस्थित हैं। सबके मनोरथ को पूर्ण करने वाली उन देवी का हम सदा स्मरण करते हैं। वेद की किसी शाखा में– **'षोडशिनः स्तोत्रमुपाकरोति'** षोडशी की स्तुति करे। ऐसा वेदवाक्य मिलता है। श्रीमद्भागवत–प्रवक्ता श्रीशुकदेवजी की इष्टदेवी किशोरी श्रीराधाजी हैं, क्योंकि श्रीशुकदेवजी षोडश वर्ष के हैं–द्व्यष्टवर्षं (श्रीमद्भा. १/१९/१६) इसलिये षोडशी किशोरी श्रीराधाजी के उपासक हैं। श्रीमहादेवजी श्रीराधासहस्रनाम के माहात्म्य की चर्चा करते हुए कहते हैं–पठ्यते हि मया नित्यं भक्त्या शक्त्या यथोचितम्–हे नारद ! मैं इस श्रीराधासहस्रनामस्तोत्र

का अपनी सम्पूर्ण शक्ति तथा भक्ति से प्रतिदिन पाठ करता हूँ। श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के वैष्णवजन सशक्तिक (राधासहित) कृष्ण की अर्चना, वन्दना और जप-ध्यान करते हैं–

राधया सहितो देवो माधवो वैष्णवोत्तमैः ।
अर्च्यो वन्द्यश्च ध्येयश्च श्रीनिम्बार्कपदानुगैः ॥

(स्वधर्मामृतसिन्धुः नवमस्तरंगः)

भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पराशक्ति परमाह्लादिनी श्रीराधाजी के श्रीचरणों की सेवा करने में किञ्चित् मात्र भी संकोच नहीं करते हैं–

प्यारीजू के चरण पलोटत मोहन ।
नील कमल के दलन लपेटे, अरुन कमल दल सोहन ।
कबहुँक लै लै नैन लगावत अलि धावत ज्यों गोहन ।
जै श्रीभट्ट छबीली राधे होत जगे ते छोहन ॥

(-युगलशतक, सुरत-सुख)

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्यं रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥

(श्रीमद्भा. १०/२९/१)

भगवान्-षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नः, योगमायापदेनात्र अघटघटना-पटीयसीं स्वशक्तिभूतां राधाम् उपाश्रितः – समाराधितः।

यथा भगवान् कृष्णः राधया विना सृष्टिं कर्तुं न क्षमः तथाऽत्रापि तया विना रासोत्सवं भवितुं नार्हति। एतत्सर्वं स्पष्टीकृता महाकविना श्रीजयदेवेन–

स्थलकमलगंजनं हृदयरंजनं
जनितरतिरंगपरभागम् ।
स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं
देहि पदपल्लवमुदारम् ॥

हे प्रियतमे राधे ! तुम्हारे अतीव सुकोमल चरणकमल शोभा-सौन्दर्य में स्थलकमल की शोभा को भी हरा देने वाले, मेरे हृदय को आनन्द देने वाले, रतिरंग-प्रेमविलास-हावभाव-महाभाव में तो असीम आनन्द देने वाले हैं। हे प्राणाधिके राधे ! तुम्हारे इन चरणकमल-द्वन्द्व में इतनी शक्ति है, जिनके स्पर्श-मात्र से ही स्वयं कामदेव भी मोहित हो जाते हैं। अर्थात् कामविष-दग्ध हो जाता है। इसलिये हे मेरी प्राणप्रिये राधे ! तुम्हारे ये श्रीचरणकमल कामविषनाशक हैं। अपने ऐसे उदार युगल चरणकमलों को मेरे सिर पर रखने की महती कृपा करें।

- (गीतगोविन्द-दशमसर्ग)

महाकवि श्रीजयदेव निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्यों में एक आचार्य थे। श्रीजयदेवजी की गुरुपरम्परा और उनका इतिवृत्त मदीय शोधप्रबन्ध-शीर्षक **"श्रीमद्भागवते निम्बार्कवेदान्तस्य समन्वयः"** में देखें। काठिया बाबा आश्रम, पो. सुखचर जि. उत्तर २४ परगना से प्रकाशित।

अब श्रीनिम्बार्क भगवान् नवें श्लोक में श्रीभगवत्पादसेवन का माहात्म्य बतलाकर प्रातःस्तव का उपसंहार करते हैं—

सञ्चिन्तनीयमनुमृग्यमभीष्टदोहं
संसारतापशमनं चरणं महार्हम् ।
नन्दात्मजस्य सततं मनसा गिरा च
संसेवयामि वपुषा प्रणयेन रम्यम् ॥९॥

अर्थात् भक्त मनोवाञ्छित फलों को देने वाले, संसार के त्रिविध तापों का शमन करने वाले सम्यक् चिन्तनीय, अन्वेषणीय श्रीनन्दनन्दन भगवान् श्यामसुन्दर के रमणीय महत्पूज्य श्रीचरणारविन्दों की मैं प्रेमपूर्वक मन, वाणी और शरीर द्वारा अहर्निश सेवा करता हूँ॥९॥

विशेष—श्रीनिम्बार्क भगवान् के मत में प्रभु नित्य किशोर हैं, अतः उनसे प्रेम करने को कहा जाता है और यही श्रीमद्भागवतकार का अभिमत है—**'सन्तं वयसि कैशोरे'** (श्रीमद्भा. ३/२८/१७) इसलिये निम्बार्कीय वैष्णवजन माधुर्य-रस की उपासना करते हैं। 'रसो वै सः' वे प्रभु रसस्वरूप ही हैं। **'रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति'** उन रसस्वरूप परिपूर्णानन्द प्रभु (श्रीनन्दनन्दन) को पाकर उपासक आनन्दवाला हो जाता है।

(तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मानन्दवली-७)

प्रातः स्तवमिमं पुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सर्वकालं क्रियास्तस्य सफलाः स्युः सदा ध्रुवाः ॥१०॥

इति श्रीश्रीमज्जगद्गुरुभगवन्निम्बार्काचार्यप्रणीतः प्रातः स्तवः॥

अर्थात् जो मनुष्य प्रातःकाल (ब्रह्ममुहूर्त में) उठकर श्रद्धा-भक्ति से इस प्रातःस्तव का प्रतिदिन नियम से पाठ करेगा उसकी सर्वदा-सार्वकालिक सकल क्रियाएँ निश्चय ही सफल होंगी॥१०॥

विशेष—ब्रह्ममुहूर्त में शयन करने से मनुष्य के पुण्य का क्षय एवं उसे पाप का भागी होना पड़ता है और फिर प्रायश्चित्त से उसकी शुद्धि होती है—

ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी ।
तां कुर्वाणो द्विजो मोहात् पादकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥

उपर्युक्त प्रातःस्तव में श्रीनिम्बार्क भगवान् ने नित्ययुगल-किशोर श्रीश्रीराधाकृष्ण की कितनी सुन्दर मधुर-रसमयी उपासना मधुररस के उपासकों के लिए उद्घाटित की है, ताकि परवर्ती रसिक-भावुक-महानुभाव इसमें सुगमता से प्रवेशकर इस युग्ममधुररस की उपासना कर सकें। स्वर्ग, मोक्ष, पृथिवी, रसातल

की सम्पत्ति और सारी सिद्धियों की प्राप्ति का मूल भगवान् श्रीश्रीराधाकृष्ण की सेवा-पूजा ही है। उद्धवजी जब पाँच वर्ष के थे, तब भगवान् श्रीश्रीराधाकृष्ण की सेवा-पूजा में वे ऐसे तन्मय हो जाते थे कि माता उन्हें कलेऊ करने को बुलाती थीं, किन्तु वे सेवा-पूजा छोड़कर जाना नहीं चाहते थे। महाराज अम्बरीषजी तो श्रीभगवत्सेवा-पूजा में ऐसे प्रवणात्मा से लगे थे कि उनके राज्य की चिन्ता श्रीभगवान् ही करते थे। महाभागवत प्रह्लादजी ने कहा है–

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥

(श्रीमद्भा. ७/६/१)

यह मनुष्य शरीर बहुत पुण्य से मिला है, यह भी एक दिन नष्ट हो जायेगा। यह मनुष्यदेह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और पाचवें पुरुषार्थ अकिंचना-भक्ति को देने वाली है। भाष्यकार ने भी कहा है–**'ततो रथरूपितं शरीरं परम्। जीवस्य सर्वसाधनप्रवृत्तीनां शरीरायत्तत्वात्'**। इसलिये मनुष्य कुमारावस्था से ही भागवत-धर्मों का आचरण करे। अथर्ववेद के अन्तर्गत गोपालतापनी उपनिषद् के पूर्वभाग में एक श्रीकृष्णस्तोत्र है, जिसमें बारह मंत्र हैं। 'प्रातःस्तव' के साथ श्रीकृष्णस्तोत्र का भी पाठ करना चाहिये। अब हम इसका अनुवाद एवं श्रीमद्भागवत में समन्वय करते हुए व्याख्यान में प्रवृत्त हो रहे हैं।



श्रुत्युक्तश्रीकृष्णस्तोत्र

नमो विश्वस्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे ।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः ॥१॥

अनुवाद– समस्त चराचर विश्व जिनका स्वरूप है, जो विश्व की स्थिति (पालन) और अन्त (संहार) के हेतु (कारण) हैं, जो सबके ईश्वर हैं, जो चराचर विश्व के अभिन्ननिमित्तोपादानकारण होने से और नियन्तृ-नियम्य भाव से भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं, उन भगवान् श्रीगोविन्द के लिए नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।।१।।

विशेष– इस अचिन्त्य-विचित्र-संस्थान-सम्पन्न असंख्येय नाम-रूपादि विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहार उन्हीं से साधित होते हैं; अतः वे विश्वात्मा सर्वनियन्ता सर्वभिन्नाभिन्नस्वरूप हैं। यह मंत्र श्रीमद्भागवत में (८/१/१३) इस प्रकार आया है– **स विश्वकायः पुरुहूतः ईशः सत्यः स्वयं ज्योतिरजः पुराणः। धत्तेऽस्य जन्माद्यजयात्मशक्त्या तां विद्ययोदस्य निरीह आस्ते।।**
मंत्र–

नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे ।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः ॥२॥

अनुवाद–जिनका ज्ञानघन रूप है, उन परमानन्द रूपी भगवान् श्रीकृष्ण के लिये नमस्कार है एवं गोपीजनवल्लभ भगवान् श्रीगोविन्द के लिए नमस्कार है।।२।।

मन्त्र–

नमः कमलनेत्राय नमः कमलमालिने ।
नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः ॥३॥

अनुवाद– जिनके कमल के जैसे मनोहर नेत्र हैं, जिनके गले में कमल की माला शोभा पा रही है, जिनकी नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई है, उन राधापति श्यामसुन्दर को पुनःपुनः नमस्कार है॥३॥

विशेष– श्रीमद्भागवत (१/८/२२) में इस मंत्र का अक्षरशः अनुवाद है–

नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ।
नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये ॥

(पंकजा=कमला राधा, अंघ्रौ=चरणे यस्यासौ तस्मै)

मन्त्र–

बर्हापीडाभिरामाय रामायाकुण्ठमेधसे ।
रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमो नमः ॥४॥

अनुवाद– जिनके सिर पर मोर–पंख का मुकुट शोभा पा रहा है, योगिगण जिन अनन्त–सत्यानन्द–चिदात्मा में रमण करते हैं, जिनकी मेधा अकुण्ठ है, अर्थात् जिनकी चरमधातु आत्मा में ही अवरुद्ध रहती हैं और राधाजी का मन ही जिनके लिए मानस–सरोवर है, उसमें विहार करने वाले हंस भगवान् श्रीगोविन्द के लिए बार–बार नमस्कार है॥४॥

विशेष– बर्हापीडं-मयूरपिच्छमुकुटम्। 'आपीडं मुकुटे स्रजि' इति शाश्वतः। अकुण्ठा-अप्रतिहता, मेधा-धारणा शक्तिर्यस्यासौ तस्मै । रामः –

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥

— इति-श्रुतेः

रमा–

यो रमाकान्तः पुरुषोत्तमो ब्रह्मशब्दाभिधेयः
तद्विषयिका जिज्ञासा सततं सम्पादनीया ।

इति–

ब्रह्मसूत्रनिम्बार्कभाष्यम् वेदान्तकौस्तुभ-वेदान्तकौस्तुभप्रभा-
भावदीपिकाव्याख्यात्रयोपेतम् द्रष्टव्यम्।

मन्त्र–

कंसवंशविनाशाय केशिचाणूरघातिने ।
वृषभध्वजवन्द्याय पार्थसारथये नमः ॥५॥

अनुवाद– कंस के वंश का विनाश करने वाले, केशी और चाणूर को मारने वाले, वृषभध्वज (महादेवजी) से सदा वन्दित पृथापुत्र पार्थ के सारथि भगवान् श्रीकृष्ण के लिए नमस्कार है॥५॥

विशेष– भगवान् श्रीकृष्ण ने लपककर कंस के केश कसकर पकड़ लिये और उसे रंगभूमि में गिराकर स्वयं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का बोझा लेकर उसके ऊपर कूद पड़े–

प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं
निपात्य रंगोपरि तुंगमंचात् ।
तस्योपरिष्टात् स्वयमब्जनाभः
पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥

(श्रीमद्भा. १०/४४/३७)

विश्वाश्रयः=सर्वाश्रयः, आत्मतन्त्रः=स्वतन्त्रः, स्वयब्जनाभः= तस्मादब्जादेव ब्रह्माण्डोत्पत्तेः, तस्योपरिष्टात्=कंसस्योपरिष्टात् पपात

न तु तं ममार। इसके बाद श्रीभगवान् ने लौह-दण्ड से कंस के वंश को मारकर विनाश कर दिया। महाभारत के युद्ध में वे अर्जुन के लिये सारथी बने।

मन्त्र-

वेणुनादविनोदाय गोपालायाहिमर्दिने ।
कालिन्दीकूललोलाय लोलकुण्डलधारिणे ॥६॥
वल्लवीनयनाम्भोज-मालिने नृत्तशालिने ।
नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥७॥

अनुवाद- बाँसुरी की मधुर ध्वनि से विनोद करने वाले, गोचारण एवं पालन करने वाले, कालियनाग का दमन करने वाले, कालिन्दी के किनारे चलने वाले, चंचल कुण्डल धारण करने वाले, वनमाला अथवा कमल की माला धारण करने वाले, व्रजस्त्रियों के नयनकमलों की माला धारण करने वाले कमललोचनों से पूजित एवं प्रपन्न जनों की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध नृत्तशाली भगवान् श्रीकृष्ण के लिए नमस्कार है ! नमस्कार है !! नमस्कार है !!! ॥६-७॥

विशेष- **गाः पालयति चारयतीति तथा गोपालः। तदुक्तं स्वयं श्रीमुखेन-वयं गोवृत्तयोऽनिशम् (श्रीमद्भा. १०/२४/२१)**

मन्त्र-

नमः पापप्रणाशाय गोवर्द्धनधराय च ।
पूतनाजीवितान्ताय तृणावर्तासुहारिणे ॥८॥

अनुवाद- पापों का समूल नाश करने वाले, पूतना को सद्गति देने वाले, तृणावर्त के प्राणहारी गोवर्द्धनधारी भगवान् श्रीकृष्ण के लिए नमस्कार है।॥८॥

विशेष– महाभागवत उद्धवजी महामति विदुरजी से कहते हैं–

अहो बकीयं स्तनकालकूटं
जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितांततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥

(श्रीमद्भा. ३/२/२३)

'हे महामते ! भगवान् श्रीकृष्ण की दयालुता का वर्णन मैं कहाँ तक करूँ, असाध्वी-राक्षसी वकासुर की बहन पूतना ने मारने की इच्छा से अपने स्तनों में कालकूट विष भरकर उनको दूध पिलाया, फिर भी उसे माता की-सी भागवती-गति दी। उनसे बढ़कर ऐसा दयालु कौन सा देवता है, जिसकी शरण में हम जायँ।।' अब **"गोवर्द्धनधराय"** इस पद का विस्तार करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए प्रार्थना करते हैं–

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मपर्षानिलैः
सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयन् ।
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रंयथा
बिभ्रद् गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित् प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ॥

(श्रीमद्भा. १०/२६/२५)

'जिस समय देवराज इन्द्र यज्ञ भंग जनित क्रोध से मूसलाधार वर्षा कर रहे थे, उस समय वज्रवृष्टि-शिलावृष्टि और अति प्रचण्ड वायु द्वारा व्रज के गोपगण, गोपीगण और पशुगण अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे। अपनी शरण में रहने वाले उन सबकी यह दुर्दशा देखकर जो मन्द-मन्द मुस्कराते हुए, जैसे कोई निर्बल बालक क्रीड़ा-छत्र एक हाथ में उठा लेता है, वैसे ही गोवर्द्धन

पर्वत को उखाड़कर सारे व्रज की जिन्होंने रक्षा की वे इन्द्रगर्वापहारी गोवर्द्धनधारी भगवान् श्रीगोविन्द हम सब प्रपन्नों पर प्रसन्न हों।

मन्त्र–

निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे ।
अद्वितीय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः ।।९।।

अनुवाद– जो पांचभौतिक प्राकृतशरीर से शून्य हैं, शुद्ध-ब्रह्मरुद्रेन्द्रादि जिनके व्यामोह में मोहित हो जाते हैं और अशुद्ध-जरासन्धादि के जो शत्रु हैं, जिनके समान तथा जिनसे बढ़कर कोई दूसरा पुरुष नहीं है, उन महान् श्रीकृष्ण के लिए नमस्कार है, नमस्कार है।।९।।

विशेष– तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।(मुण्डकोपनिषद् ३/१/८), तं=परमात्मानं, ध्यायमानः=मुमुक्षुः तत्प्रसादेन विशुद्धान्तः करणो भवति ततस्तु तं पश्यते, ध्रुवास्मृत्या तं स्वानुभवविषयी-करोतीत्यर्थः। (इति तत्त्वप्रकाशिकाटीकायाम्)

राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी महाराज से पूछा–

ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्णे इयान्प्रेमा कथं भवेत् ।
योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ।।

हे ब्रह्मन् ! दूसरे के पुत्र श्रीकृष्ण में व्रजवासियों का ऐसा सर्वाधिक प्रेम कैसे हो गया, जैसा कि ऐसा अभूतपूर्व प्रेम अपने लड़के-बच्चों में भी नहीं था; यह बात कृपाकर मुझे बतलाइये। परीक्षित् के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रीशुकदेवजी ने बतलाया है–

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ।।

(श्रीमद्भा. १०/१४/४९, ५५)

माया दम्भे कृपायां चेति विश्वः ।

'हे राजन् ! तुम इन श्रीकृष्ण को सम्पूर्ण चराचर प्राणियों की आत्मा समझो, यहाँ व्रज में जगत् के हित के लिए (अपने भक्तजनों के उद्धार के लिए) अपनी कृपा से वे देहधारी के समान प्रतीत हो रहे हैं। देवयजन-भूमि कुरुक्षेत्र में स्वर्गच्युत देवता के समान शरशय्या पर पड़े महान् योद्धा परमज्ञानी भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्यपरम भक्त पितामह भीष्म शरीर का परित्याग करते समय भावपूर्ण ग्यारह पुष्पिताग्रा छन्दों से भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं—जितने भी शरीरधारी जीव हैं, उन सबों के हृदयों में एक ही यह अजन्मा श्रीकृष्ण बैठा हुआ है, जैसे सबों की आँखों में एक ही सूर्य होता है, वैसे

(श्रीमद्भा. १/९/४२)

मन्त्र—

प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर ।
आधिव्याधिभुजंगेन दष्टं मामुद्धर प्रभो ॥१०॥

अनुवाद—हे प्रभो ! कर्तुमकर्तुमन्यथा-कर्तुं-सर्वसमर्थ भगवन् ! आप मुझ प्रपन्न पर प्रसन्न हों, मैं आधि (मानसी व्यथा) और व्याधि (दैहिकी पीड़ा) रूप सर्प से डसा हुआ हूँ। आप कृपा कर मेरा उद्धार कीजिये। हे परमेश्वर ! मैं आप के श्रीचरणों में बारम्बार नमस्कार करता हूँ। आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक दुःखयुक्त जन्म-जरा-मरणात्मक संसार महासर्प से उद्धार करके आप मुझे अपने दिव्य-धाम को प्राप्त करवा दीजिये।।१०।।

मन्त्र—

श्रीकृष्ण ! रुक्मिणीकान्त ! गोपीजनमनोहर।
संसारसागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो ॥११॥

(श्रिया=राधया सह कृष्णः तत्सम्बुद्धौ हे श्रीकृष्ण)

'हे जगद्गुरो ! मैं संसार-सागर में डूबा हुआ हूँ, उससे आप मेरा उद्धार करें और कृपाकर आप मुझे अपने परम धाम ले चलें।।११।।'

विशेष– जगद्गुरु श्रीकृष्ण ने गोपियों के मन को हरने वाली वंशी बजायी और वे सब सांसारिक कार्य त्यागकर उनसे मिलने के लिये सब-की-सब दौड़ पड़ीं। कोई गाय दुहने के लिए बैठी थी, वंशीध्वनि कान में पड़ी तो दोहनी को वहीं पटककर भागी। दूसरी चूल्हे पर दूध चढ़ाकर भागी। कोई हलुआ बना रही थी, उसे चूल्हे से उतार कर दौड़ पड़ी। कोई अपने पतिदेव को भोजन परोस रही थी, हाथ का भोजन वहीं फेंककर दौड़ पड़ी। कोई अपने बच्चों को दूध पिला रही थी, बच्चे को भूमि पर रखकर श्रीकृष्ण की ओर दौड़ पड़ी। कोई अपने पतिदेव के पैर दबा रही थी, कोई भोजन करने बैठी थी, कोई घर लीप रही थी, कोई बर्तन मल रही थी, कोई आँखों में अंजन लगा रही थी, जिनके हाथ में जो-जो कार्य थे; वे वहीं छोड़ दिये। बिना किसी से पूछे ही बड़े वेग से जगद्गुरु श्रीकृष्ण के पास दौड़ चलीं। उनके वस्त्र-आभूषण सब अस्त-व्यस्त हो रहे थे। पैरों का आभूषण हाथों में और हाथों का कानों में ! इस प्रकार वे भावावेश में उल्टे-सीधे वस्त्र-आभूषणों को धारणकर अपने-अपने घरों से निकल पड़ीं। उन्हें पति-पिता, भाई और बन्धुओं ने रोकना चाहा, किन्तु गोविन्द ने (गोविन्दापहृतात्मनः) (श्रीमद्भा. १०/२९/५-८) उनके मन का अपहरण कर लिया था। इसीलिए भगवान् को **"गोपीजनमनोहर"** कहा है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं–हे राजन् !

कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम्।
पतिं पर्यचरद् भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥

याः सम्पर्यचरन्प्रेम्णा पादसम्वाहनादिभिः ।
जगद्गुरुं भर्तृबुद्धया तासां किं वर्ण्यते तपः॥

(श्रीमद्भा. १०/६०/१/१०/९०/२७)

'एक समय द्वारका में जगद्गुरु श्रीकृष्ण अपने दिव्यातिदिव्य अतिसुन्दर मसहरीदार पलँगपर तकिया लगाकर आराम से बैठे हुए थे। भीष्मककन्या रुक्मिणीजी सखियों के साथ पंखा से पतिदेव की सेवा कर रही थीं। वे जगद्गुरु को पंखा कर रही थीं। जगद्गुरु श्रीकृष्ण को पति बनाकर जिन्होंने परम प्रेम से उनके श्रीचरणकमलों को सहलाया, उन्हें नहलाया-धुलाया, खिलाया-पिलाया, तरह-तरह से उनकी सेवा में निरत रहीं, उनकी तपस्या का वर्णन भला कौन कर सकता है?'

मन्त्र-

केशव ! क्लेशहरण ! नारायण ! जनार्दन ! ।
गोविन्द ! परमानन्द ! मां समुद्धर माधव ! ॥१२॥

(मा=राधा, तस्या धवः=पतिः) हे माधव ! (इन्दिरा लोकमाता मा इत्यमरः) हे केशव ! हे क्लेशों को हरने वाले ! हे नारायण ! हे जनार्दन ! हे गोविन्द ! हे परमानन्द ! मेरा उद्धार कीजिये।।१२।।

॥ इति श्रत्युक्तं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

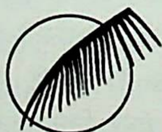
क इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्वदेहिनाम् ।
आबां तवांगसम्भूतौ तस्मात्केशवनामवान् ॥

महादेवजी कहते हैं—हे भगवन् ! क (ब्रह्मा) और सब देहियों का ईश मैं (शिव) आपके अंग से निकले हैं, इसलिये आप केशव नाम वाले हैं। विराट् पुरुष जब चौबीस तत्त्वों के अण्ड का भेदन कर बाहर निकले, तब उन्होंने अपने रहने का स्थान ढूँढ़ा। वे स्वयं पवित्र हैं, अतः पवित्र जल की सृष्टि की—

"अपोऽस्राक्षीच्छुचिः शुचीः"। सहस्रवर्षपर्यन्त उन्होंनें स्वसृष्ट जल में वास किया। इससे कृष्ण का 'नारायण' नाम हुआ।

तास्ववात्सीत् स्वसृष्टासु सहस्रपरिवत्सरान् ।
तेन नारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवः ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥

बुद्धिमान् मनुष्यों को चाहिये कि मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से खींचकर उस मन को बुद्धिरूपी सारथि की सहायता से श्रीश्रीराधाकृष्ण में ही लगा दें। अर्थात् श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगलोपासक अपने फैले हुए चित्त को सब ओर से हटाकर एक स्थान पर स्थिर करें और फिर **अन्य अंगों का चिन्तन न करते हुए केवल श्रीश्रीराधाकृष्ण के मुस्कानयुक्त मुखारविन्द का ही ध्यान करें।** मुखारविन्द में चित्त के स्थिर हो जाने पर उसे वहाँ से हटाकर आकाश में स्थिर करें, तदन्तर उसे भी त्यागकर श्री श्रीराधाकृष्ण के शुद्ध स्वरूप में आरूढ़ हो और कुछ भी चिन्तन न करें। इस प्रकार उपासना करने वाले उपासकों को नित्ययुगल-किशोर सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीश्रीराधाकृष्ण की प्राप्ति होती है। फिर वे जन्म-मरणरूप आवागमन को प्राप्त नहीं होते हैं और अनन्त तथा अविनाशी निरतिशय परमानन्द सुख का अनुभव करने लगते हैं।



ब्रह्मकृतगोविन्दस्तोत्र

श्रीहंसं च सनत्कुमारप्रभृतीन् वीणाधरं नारदं
निम्बादित्यगुरुं च द्वादशगुरून् श्रीश्रीनिवासादिकान् ।
वन्दे सुन्दरभट्टदेशिकमुखान् वस्विन्दुसंख्यायुतान्
श्रीव्यासाद्धरिमध्यगाच्च परतः सर्वान् गुरून् सादरम् ॥

ब्रह्मोवाच–

चिन्तामणिप्रकरसद्मसुकल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम् ।
सखीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१॥

अनुवाद– सैकड़ों कल्प-वृक्षों से घिरे हुए, चिन्तामणि नामक रत्नसमूहों से बने हुए भवनों में जो गोओं का पालन-पोषण करते हैं एवं जो असंख्य सखियों की आदरपूर्वक मुस्कानों से और तिरछी चितवनों से संसेव्य हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ॥१॥

विशेष– इन्द्र ने ऐरावत की सूँड़ से उद्धृत आकाश-गंगा के जल द्वारा भगवान् का अभिषेक किया और उनका नाम 'गोविन्द' रखा है –

गाः पशून् गां स्वर्गं वा इन्द्रत्वेन विन्दतीति ।
गाः सर्वेन्द्रियाणि, आकर्षत्वेन विन्दतीति वा गोविन्दः ।
अथवा– गोशब्दवाचकत्वाज्ज्ञानं तेनोपलभ्यते गोविन्दः ।
वेत्ति शब्दराशिं गोविन्दो गोचारणादपि च ॥

अजा स्यादप्रसूता गोः सकृत् सूता महिष्यपि ।
अन्या गाव इति प्रोक्ता इति शब्दार्थवेदिनः ॥

जो गाय बिआई नहीं है, उसे 'अजा' और जो एक बार बच्चा पैदा कर चुकी है उसे 'महिषी' तथा अन्यों को 'गो' कहा गया है। गोविन्द इन्हें चराया करते थे।

तं गोरजच्छुरितकुन्तलबद्धबर्ह-
वन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ।
वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं-
गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः ।

(श्रीमद्भा. १०/१५/४२)

इस श्लोक में श्रृंगार-रस को पुष्ट करने वाली झाँकी कितनी सुन्दर है ! अखिल-विश्व-ब्रह्माण्ड-नायक प्रपन्न-परिपालक आदि पुरुष भगवान् श्रीगोविन्द गोचारण करके सायंकाल वृन्दावन लौट रहे हैं। आगे-आगे चलती गोओं के खुरों से उड़ी धूल उनके काले-काले घुँघराले बालों पर छायी है। सिर पर मोरपंख का मुकुट शोभा पा रहा है। गले में वनमाला धारण किये हैं। मन्द-मन्द मुस्कराते हुए वे बड़े सुन्दर ढंग से देखते वंशी बजाते हुए आ रहे हैं। उनके सखा-गोप-बालक उनकी निर्मल कीर्ति का गान कर रहे हैं। इस अद्भुत झाँकी को देखने के लिए गोपियाँ इकट्ठी होकर चारों ओर से मार्ग पर आ गयीं। मैं ऐसे आदि पुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।

वेणुं क्वणन्तमरविन्ददलायताक्षं
बर्हावतंसमसिताम्बुदसुन्दरांगम् ।
कन्दर्पकोटिकमनीयविशेषशोभं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२॥

अनुवाद– कमल दल के समान जिनके मनोहर नेत्र हैं, नीले मेघ के समान जिनका सुन्दर अंग श्याम-श्रीविग्रह है, मोरपंख जिनका शिरोभूषण है, जिनकी छवि-माधुरी की विशेष शोभा करोड़ों कामदेवों को भी लुभाती है तथा जो बाँसुरी बजाते हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।२।।

विशेष– आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द जिस नवकानन. ....वृन्दावन में वंशी-ध्वनि करते हैं, उस वन की शोभा अपूर्व है। पुष्पित वनराजियों पर बैठे मतवाले भ्रमर एवं पक्षीगण मधुर कलरव कर रहे हैं; जिससे नदी, पर्वत, सरोवर सभी जगह प्रतिध्वनियाँ गूँज रही हैं। मधुपति श्रीगोविन्द ने अद्भुत गोप-वेष धारणकर वेणु-वादन करते हुए तथा गोओं को चराते हुए बलरामजी और ग्वालवालों के साथ वन में प्रवेश किया। आप लोग हाथ जोड़कर गोपालवेषधारी नित्यकिशोर भगवान् श्री गोविन्दके इस स्वरूप का एकाग्र चित्त से ध्यान करें–

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ।

(श्रीमद्भा. १०/२१/२-५)

आलोलचन्द्रकलसद्वनमाल्यवंशी
रत्नांगदं प्रणयकेलिकलाविलासम् ।
श्यामं त्रिभंगललितं नियमप्रकाशं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।३।।

अनुवाद– जो गले में अतिसुन्दर चन्द्राकार चंचल वनमाला धारण किये हैं, जिनके दोनों हाथ वंशी से विभूषित है

तथा रत्न-जटित बाजूबन्दों से सुशोभित हैं। जो सर्वातिशायी लोक-विलक्षण दिव्यातिदिव्य अलौकिक मधुरक्रीडारस में निमग्न रहते हुए स्वयं प्रकाशमान हैं, मैं उन श्यामसुन्दर त्रिभंगसुन्दर आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।३।।

अंगानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति
पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति ।
आनन्दचिन्मयसदुज्ज्वलविग्रहस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।४।।

अनुवाद–आनन्द-चिन्मयता से उज्ज्वल है दिव्य विग्रह जिनका, जिनके सभी अंग सम्पूर्ण इन्द्रियों से वृत्तिमान हैं। अर्थात् सभी अंगों से सभी इन्द्रियों का कार्य होता है। चिरकालतक जगत्प्रपंच को पालते हैं, देखते हैं और सबकी परिस्थिति का आकलन करते हैं। ये सब कार्य इन्द्रियवृत्तिमान् भगवान् के सर्वांग से सम्पन्न होते हैं। मैं ऐसे आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का सदा भजन करता हूँ।।४।।

विशेष– श्रुतियों में भी श्रीभगवान् के सच्चिदानन्दस्वरूप-दिव्यमंगल-विग्रह का ठीक इसी तरह वर्णन मिलता है–

य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते, हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः।[१] यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषम्।[२] यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि।[३] [आदिपुरुषं भगवन्तं श्रीगोविन्दं विशिनष्टि–रुक्मवर्णं=कमनीयवर्णं प्रकाशमानं सौन्दर्यमाधुर्यकैशोर्यलावण्यकारुण्यमार्दवसौगन्ध्य-सौशील्याद्यनन्तकल्याणगुणगणगणालयपरमयोगिध्येयध्यातृकर्म-

(१) छान्दोग्योपनिषद् १/६/७ (२) मुण्डकोपनिषद् ३/१/३
(३) ईशावास्योपनिषद् १६

भर्जिष्णुसर्वपुरुषार्थसुरद्रुमदिव्यमंगलसच्चिदानन्दविग्रहयुक्तमादिपुरुषं भगवन्तं श्रीगोविन्दं भजामि इति यावत्। **अनेन नीरूपस्यैव ब्रह्मणो दर्शन मोक्षहेतुरिति मन्यमाना स्वतो निरस्ताः।]**

आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द के प्राकृत शरीर का निषेधकर वेदों ने उनको यहाँ दिव्यमंगल-विग्रहवान् कहा है। श्रीभगवान् के सिर से लेकर पैर के नख तक सभी अंग-अवयव को सुवर्णमय कहा है। यहाँ का 'मयट्' प्रत्यय 'गोमय' की भाँति विकारार्थक नहीं है। जिससे कि कोई यह समझ बैठे कि जिस प्रकार 'गो' शब्द के साथ मयट् प्रत्यय करने पर गोमय शब्द बनता है, उसी प्रकार सुवर्णमय शब्द का अर्थ सुवर्ण का विकार नहीं समझना चाहिये, यहाँ का मयट् प्रत्यय प्रचुरता का बोधक है और जो 'गोमय' शब्द में मयट् प्रत्यय हुआ है, वह गो का विकार अर्थ में मयट् जानना चाहिये। (आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द) आनन्दमय चिन्मय सुवर्णमय ज्योतिर्मय इत्यादि शब्दों में प्रचुरता के ही अर्थ मे मयट् प्रत्यय हुआ है। तत्प्रकृतवचने मयट्[१] इस पाणिनि-सूत्र के अनुसार प्रचुरता-अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है। जैसे कि भाष्यकार भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य ने कहा है-**प्राचुर्यार्थकस्यापि मयटः स्मरणात्।**[२]

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूप-
माद्यं पुराणपुरुषं शश्वत् किशोरं च ।
वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥५॥

अनुवाद- जिनके समान और जिनसे बढ़कर कोई दूसरा नहीं है, जिनकी शरण में चले जाने पर कोई नीचे नहीं

---

(१) अष्टाध्यायी सू. ५/४/२१ (२) ब्रह्मसूत्रनिम्बार्कभाष्यम्

गिरता है अथवा जिनकी चरमधातु च्युत नहीं होती अर्थात् सदैकरसस्वरूप, जिनका कोई कारण नहीं है; जो देश, काल और वस्तु से परिच्छिन्न नहीं हैं; जो सबके कारण हैं, जिनकी सदा किशोरावस्था है, जो पूर्वमीमांसा-कर्मकाण्डों में दुर्लभ हैं, किन्तु अकिंचना-भक्ति में सुलभ हैं; मैं उन पुराणपुरुष, आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।५।।

विशेष–श्रीमद्भागवत में ब्रह्मसंहिताका समन्वय कितना ही सुन्दर है- **अपीच्यदर्शनं शश्वत् सर्वलोकनमस्कृतम्। संतम् वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरम्।।** (श्रीमद्भा. ३/२८/१७) नित्यकिशोर अवस्था वाले श्रीगोविन्द के दर्शन बड़े ही सुन्दर हैं। जिनको वायु, यम, इन्द्रादि सभी लोकपाल नमस्कार करते हैं और वे अपने भक्तों पर कृपा करने के लिए आतुर रहते हैं। ऐसी ही किशोरावस्था श्रीभगवद्-विग्रह में ध्यान करने का शास्त्र-विधान है। **'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते'** इस श्रीभगवदाज्ञानुसार सभी सम्प्रदाय-वालों को नित्ययुगलकिशोर का ही ध्यान करना चाहिये। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो संस्कार द्वारा श्रीभगवद्भजन का अधिकार प्राप्त कर लेने पर भी वेद के अर्थवाद से मोहित होकर कर्मकाण्ड के चक्कर में फँसे रहते हैं। उन्हें हरिभजन सुहाता ही नहीं, वे भक्तों को देखकर उनकी हँसी उड़ाते हैं और आवेश में आकर उनके सर्वस्व श्रीभगवान् आदिपुरुष गोविन्द को भला-बुरा बका करते हैं। ये मूर्ख कर्म का वास्तविक स्वरूप न जानकर भारी कर्मकाण्डी बनते हैं, इसलिए कहा है–**वेदेषु दुर्लभं गोविन्दम्**=वेदों में गोविन्द को दुर्लभ कहा है। भगवान् भाष्यकार ने भी कहा है–क्रत्वंग ब्रह्मेति बालभाषितम्।[१] यज्ञ का अंग ब्रह्म है, ऐसा कहना बालकों का भाषण है। वस्तुतः – **अकिञ्चनगो**

हरि:[२]**=न विद्यते श्रीभगवद्व्यतिरिक्तं वस्तु यस्यासौ अकिञ्चनस्तेन गम्यते प्राप्यते हरि नान्यः।** अर्थात् जिनके पास श्रीभगवान् को छोड़कर दूसरी कोई भी चीज नहीं है, वे ही उनको जान सकते और प्राप्त कर सकते हैं। वे तो अकिञ्चन भक्तों के विषय हैं। हे पार्थ ! जो वेदवाक्यों में रत हैं, वे अज्ञानी-मूर्ख-अल्पबुद्धि वाले अविवेकी इस प्रकार की पुष्पित वृक्षों जैसी शोभित अर्थात् दिखाऊ शोभा-युक्त वाणी को कहा करते हैं कि जो चातुर्मास में यज्ञ करता है, उसको अक्षय पुण्य होता है। हम सोम पीकर अमर हो गये। स्वर्ग में न गर्मी, न सर्दी, न दु:ख है और न शत्रु है, ऐसे ज्ञानहीन पुरुष जन्मरूप-कर्मफल को देने वाली ही बातें किया करते हैं और भोग एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए ऐसे बहुत से क्रिया-भेदों को बतलाने वाली वाणी को कहने वाले वे मूर्ख बार-बार जन्म-जरा-मरणरूप संसार-प्रवाह में घूमते रहते हैं।[३]

पन्थास्तु कोटिशतवत्सरसम्प्रगम्यो
वायोरथापि मनसो मुनिपुंगवानाम् ।
सोऽप्यस्ति यत्प्रपदसीम्न्यविचिन्त्यतत्त्वे
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥६॥

---

(१) ब्रह्मसूत्रनिम्बार्कभाष्यम् सू. १/१/४ तत्र-
वेदान्तकौस्तुभवेदान्तकौस्तुभप्रभाभावदीपिकाव्याख्यात्रयोपेतम्।

(२) श्रीमद्भागवतम् ४/३१/२९/३, श्रीमद्भगवद्गीता २/४२/४३

नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः।
फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि।।
(श्रीमद्भागवतम् ११/३/४६, ११/२१/२६)

अनुवाद– प्राणायाम की क्रिया द्वारा वायु को रोककर योग-मार्ग से अथवा चिदचिद्ब्रह्म-स्वरूप का अनुसंधान करने वाले भक्ति-विरक्ति-प्रतिपत्ति-सम्पन्न उपासकों का शरीर-पात हो जाने पर जिनके श्रीचरणों के अग्रभाग की प्राप्ति होती है अथवा शतकोटिवर्ष समाधि-योगद्वारा योगिगण जिनके श्रीचरणारविन्दों की सन्निधि में पहुँचे हैं, मैं उन आदि पुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।६।।

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्डकोटि-
यच्छक्तिरस्ति जगदण्डचया यदन्तः ।
अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।७।।

अनुवाद– एक ही उस आदिपुरुष ने करोड़ों ब्रह्माण्डों की रचना की, जिनकी शक्ति निखिल-विश्व-ब्रह्माण्डों के भीतर सन्निहित है। उन ब्रह्माण्डों के अन्दर रहने वाले परमाणु-समूहों के भीतर जो स्थित हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।७।।

विशेष– प्रपदम्=पादाग्रम्। सीमन् शब्द नकारान्त स्त्रीलिंग। मुनिपुंगवानाम्=मुनीन्द्राणाम्। तस्य भावः तत्त्वं तस्मिन्। परो हि योगो मनसः समाधिः। (श्रीमद्भागवतम् ११/२३/४६) अनेकजन्म-संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्। (श्रीमद्गी.) तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये। (छान्दोग्योपनिषद् ६/२/१४)

भगवान् सूत्रकार ने जगत् को ब्रह्म की शक्ति-विक्षेप परिणाम माना है-आत्मकृतेः परिणामात्। ब्र. सू. निम्बार्कभाष्य में इसका अर्थ अवलोकन करना चाहिये। अर्थात् जगत् ब्रह्म की शक्ति-विक्षेप परिणाम है। यह पुराणेतिहास और उपनिषदों द्वारा

जाना जाता है। जैसे सृजस्यदः पासिपुनर्ग्रसिष्यसे यथोर्णनाभिर्भगवन् स्वशक्तिभिः। (श्रीमद्भागवतम् ३/२१/१९)

प्रसार्य च यथांगानि कूर्मः संहरते पुनः ।
तद्वद् भूतानि भूतात्मा निर्माय ग्रसते पुनः ॥

(श्रीमन्महाभारतशान्तिपर्व ३२६/३९)

यथोर्णनाभिः सृजते गृहते च.....इत्यादि। मुण्डक.। तदात्मानं स्वयमकुरुत। तैत्तिरीयोपनिषद्। एतेन विवर्तवादः स्वतो विनष्ट परिणामवादस्वीकारात्।

यद्भावभावितधियो मनुजास्तथैव
सम्प्राप्य रूपमहिमासनयानभूषाम् ।
सूक्तैर्यमेव निगमप्रथितैःस्तुवन्ति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥८॥

अनुवाद– भक्ति से भावित हृदय वाले मनुष्य अपने उपर्युक्त रूप, महिमा, आसन, वाहन और आभूषणों को प्राप्त करके वेद-प्रसिद्ध मंत्र, स्तव-स्तोत्र और सूक्तों द्वारा जिनकी स्तुति करते हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।८।।

विशेष– द्विजातियों को पुरुषसूक्त से आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का पूजन करना चाहिये और स्तव-स्तोत्रों से उनकी स्तुति प्रतिदिन करनी चाहिये। पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः। (श्रीमद्भा. १०/१/२०)

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः ।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥९॥

अनुवाद—जो सर्वात्मा अपने स्वरूप से अथवा उनकी निजरूपा पराशक्ति राधाजी के साथ और आनन्द-चिन्मय रस से प्रतिभावित-सम्पूरित सखियों के साथ गोलोक में निवास करते हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।९।।

विशेष—आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द गोलोक में ही निवास करते हैं; सर्वत्र नहीं करते हैं, किसी को ऐसी शंका न हो जाय, अतः इसका उत्तर देते हुए स्तुति करते हैं—

अखिलात्मभूतः=सर्वात्म-विश्वात्मभूत इत्यर्थः

प्रेमांजनच्छुरितभक्तिविलोचनेन
सन्तःसदैव हृदयेषु विलोकयन्ति ।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१०॥

अनुवाद—सन्तजन जिन अचिन्त्य गुणस्वरूप भगवान् श्यामसुन्दर का प्रेमलक्षणा भक्ति के नेत्रों द्वारा अपने हृदयों में सदैव दर्शन करते हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।१०।।

विशेष—जो लोग कहते हैं कि श्रीबलदेव विद्याभूषण द्वारा गोविन्दभाष्य में ब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति रहने की बात कहने से[१] ब्रह्म के साथ जीव और जगत् के अचिन्त्य भेदाभेद का ही उन्होंने स्थापन किया है, उन लोगों की यह उक्ति युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि ब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति रहने की

---

(१) विषयो निरवद्यो विशुद्धानन्तगुणगणोऽचिन्त्यानन्तशक्तिः पुरुषोत्तमः (१/१/१ सूत्र का भाष्य) यस्मात् पराद् वा अविचिन्त्य शक्तिकात् स्वयं कर्त्र्यादिरूपा दुपादानरूपाच्च सन्मादि भवति तद्ब्रह्मात्र जिज्ञास्यम् (१/१/२ सूत्रभाष्य)।

बात कहने से ही भेदाभेद को अचिन्त्य कहना नहीं होता है, श्रीनिम्बार्काचार्य, श्रीभास्कराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य और श्रीशंकराचार्य इन सब आचार्यों ने ही स्वरचित भाष्य में ब्रह्म की शक्ति को अचिन्त्य कहा है।[१]

अत: **श्रीबलदेव विद्याभूषण** ने ब्रह्म की शक्ति को जो अचिन्त्य कहा है, वह कुछ नयी बात नहीं है और उसके द्वारा भेदाभेद-सम्बन्ध को अचिन्त्य कहा नहीं गया है। यदि अचिन्त्य-भेदाभेद ही उनका सिद्धान्त होता, तो वे अपने भाष्य में यह स्पष्ट रूप से कहते, किन्तु यह उनके भाष्य में कहीं भी कहा नहीं गया है।

एक बात यह भी है कि यदि उनके मत में ब्रह्म के साथ जीव और जगत् का भेदाभेद अचिन्त्य हो, तो वे दृष्टान्त के द्वारा उस भेदाभेद को कैसे देख सकते हैं? कारण जो अचिन्त्य है, उसको समझाने के लिये लौकिक दृष्टान्त दिया नहीं जा सकता, किन्तु उन्होंने लौकिक दृष्टान्त के द्वारा शक्तिरूप जीव और शक्तिमान् ब्रह्म का भेदाभेद समझाया है, जैसे उन्होंने स्वरूपतो भेदस्तथा शक्तिमतो ब्रह्मणे: शक्त्यभेदेऽपि शक्ति ब्रह्मणो: सोऽस्तीति न क्षति:" (२/१/१३ सूत्र भाष्य) जैसे लोक में पुरुष से दण्ड का अभेद रहने से भी दण्ड और पुरुष में भेद रहता है, वैसे शक्तिमान् ब्रह्म से शक्ति का अभेद रहने पर भी शक्ति और

---

(१) श्रीनिम्बार्काचार्यजी ने उनके भाष्य में कहा है—अनन्ताचिन्त्यस्वाभाविक स्वरूपगुणशक्त्यादिभिर्बृहत्तमो यो रमाकान्त: पुरुषोत्तम: ब्रह्मशब्दाभिधो य: (१/१/१ सूत्रभाष्य), तस्मात् सर्वज्ञ: सर्वाचिन्त्यशक्ति: विश्वजन्मा-दिहेतुर्वेदैकप्रमाणगम्य: सर्वाभिन्नाभिन्नो भगवान् वासुदेवो विश्वात्मैव (१/१/४ सूत्रभाष्य)।

ब्रह्म में भेद है, इसमें कोई क्षति भी नहीं है। जीव जो ब्रह्म की शक्ति है, वह उन्होंने "ब्रह्मशक्तिर्जीव:" (२/३/४१ सूत्रभाष्य) वाक्य में कहा है। अत: श्रीबलदेव विद्याभूषण के मत में ब्रह्म के साथ जीव और जगत् का अचिन्त्य-भेदाभेद कहना किसी प्रकार से युक्तियुक्त नहीं है।

वस्तुत: अंश और अंशी का तथा शक्ति और शक्तिमान् का भेदाभेद सम्बन्ध अचिन्त्य नहीं है; किन्तु चिन्त्य है, वह अंशी (वृक्ष) और अंश (शाखा) का और शक्तिमान् (जीवात्मा) का तथा उनकी दर्शन-श्रवणादि शक्ति में भेदाभेद का दृष्टान्त देकर "भेदाभेदवाद समस्त शास्त्रों का सिद्धान्त है", प्रकरण में (पृ. ११-१२-१३-१४) पहले ही दिखाया गया है। उस प्रकरण का पाठ करने से यह और भी स्पष्टरूप से बोधगम्य होगा। इन सब विचारों के द्वारा यह ही निश्चय होता है कि श्रीबलदेव विद्याभूषण ने अपने गोविन्दभाष्य में श्रीनिम्बार्काचार्य के भेदाभेदवाद को ही रूपान्तरित करके लिखा है। (निम्बार्कवेदान्त का संक्षिप्त सार पृ. ६५-६८)

श्रीभास्कराचार्यजी ने उनके भाष्य में कहा है-"**अनन्ता हि तस्य शक्तयोऽचिन्त्याश्च**" (१/४/२५ सूत्रभाष्य) इत्यादि।

श्रीरामानुजाचार्यजी ने अपने भाष्य में कहा है-"**अचिन्त्य-शक्तियोगात् प्राक्सृष्टेरेकस्य निरवयवस्यापि.......**" (२/१/३४ सूत्रभाष्य) इत्यादि।

श्रीशंकराचार्यजी ने भी उनके भाष्य में कहा है-"**किमुता-चिन्त्यप्रभावस्य ब्रह्मणो रूपं विना शब्देन निरूप्येत**" (२/१/२७ सूत्रभाष्य) इत्यादि।

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु ।
कृष्णः स्वयं समभवत्परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥११॥

अनुवाद– जो श्रीराम, परशुराम, वराह, वामन और मत्स्यादि विग्रहों में कला रूप से रहते हुए जगत् में यथासमय सुन्दर-सुन्दर अवतारों को धारण करते हैं और जो परम पुरुष स्वयं श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुए हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।११।।

विशेष– जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण माता देवकी के गर्भ में प्रकट हुए, उस समय ब्रह्मादि देवगण कंस के कैदखाने में आकर उनकी स्तुति करते हुए वहाँ इस प्रकार बतलाते हैं–हे ईश ! आपने मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, राजन्य (कोसलेन्द्र राम) विप्र (भार्गवेन्द्र परशुराम) विबुध (वामन) आदि रूपों में अवतार धारणकर जैसे पहले त्रिलोकी की रक्षा की है, वैसे अब भी पृथिवी का भार हरणकर आप हमारी रक्षा करें, हे यदूत्तम ! हम आपके चरणों की वन्दना करते हैं। (श्रीमद्भा. १०/२/४०)

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि
कोटिष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम् ।
तद् ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं
गोविन्दमादिपुरुष तमहं भजामि ॥१२॥

अनुवाद–जिनकी प्रभा करोड़ों-करोड़ों विश्व-ब्रह्माण्डों में व्याप्त है, सारी पृथिवी में और सुतल आदि लोकों मे जिनकी विभूतियाँ भिन्न-भिन्न हैं, वे ब्रह्म हैं, वे किसी की कला (अंश)

नहीं हैं; वे देश, काल और वस्तु से परिच्छेद शून्य हैं और सर्वरूप हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।१२।।

विशेष– इसी प्रकार श्रुति और स्मृतियों में भी वर्णन मिलता है–तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति

– कठोपनिषद् २/३/१५

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजोविद्धि मामकम् ।।

(श्रीमद्भगवद्गीता १५/१२)

यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ।

(श्रीमद्भागवतम् १०/१३/५५)

उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द के प्रकाशित होने पर ही सूर्य, चन्द्र, तारा सब-के-सब प्रकाशित होते हैं। उन्हीं की कान्ति (प्रकाश) से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है। हे अर्जुन ! सूर्य में स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है, रात में चन्द्र का जो तेज और जो अग्नि में स्थित तेज है, सब को तू मेरा ही तेज जान। अर्थात् मेरी ही विभूति जानो। हे राजन्! उन भगवान् श्रीकृष्ण के प्रकाश से ही यह सारा चराचर जगत् प्रकाशित हो रहा है।

माया हि यस्य जगदण्डशतानि सूते
त्रैगुण्यतद्विषयभेदवितायमाना ।
सत्त्वावलम्बिपरसत्त्वविशुद्धसत्त्वं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।१३।।

अनुवाद– जिनकी सत्-रज-तमरूप, शुक्ल, रक्त और कृष्णवर्णा त्रिगुणमयी एवं जड़-जगत्सम्बन्धिनी-विस्तारिणी माया है, उन्हीं सत्त्वाश्रयरूप, परसत्त्वरूप, विशुद्धसत्त्वरूप आदि-पुरुषभगवान् श्रीगोविन्द का मैं भजन करता हूँ।।१३।।

विशेष– माया के स्वरूप की जानकारी के लिए जिज्ञासु व्यक्ति **'वेदान्तरत्नमञ्जूषा'** और **'सिद्धान्तरत्नाञ्जलि'** नामक पुस्तक पढ़ें।

आनन्दचिन्मयरसात्मतया मनस्सु
यः प्राणिनां प्रतिफलन् स्मरतामुपेत्य ।
लीलायितेन भुवनानि जयत्यजस्रं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१४॥

अनुवाद–जो स्मरणकारी प्राणियों के मनों में जाकर आनन्दचिन्मय-रसात्मकरूप से प्रतिफलित होकर परमानन्द से निरन्तर भुवनों को वशीभूत करते हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ॥१४॥

विशेष– सब के अन्तर्यामी तथा अँगूठे के बराबर आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द देव, नर और तिर्यक् आदि योनियों के अनुरूप तत्तद् हृदयों में निवास करते हैं। (कठोपनिषद् २/३/१७) श्रीभगवान् कहते हैं–मैं सब्र प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से निवास करता हूँ। इसलिये घट-पट-मठ सर्ववासी मेरा अनादर करके जो मरणधर्मा मेरी प्रतिमा का पूजन करता है, उसकी वह पूजा मैं ग्रहण नहीं करता हूँ। मैं सब भूतों का आत्मा हूँ, सब भूतों में स्थित हूँ। मेरी अवहेलना करके जो केवल प्रतिमा के पूजन में ही लगा रहता है, वह तो मानो भस्म में ही हवन कर रहा है। (श्रीमद्भा. ३/२९/२१-२२) उससे उन्हें पूजन एवं हवन का फल प्राप्त नहीं होता है। वह जन्म-जरा-मरण-चक्र में ही घूमता रहता है। यहाँ श्रीभगवान् ने मूर्ति-पूजन का निषेध और निन्दा नहीं की है; प्रत्युत यह कहा है कि सर्वत्र भगवद्दृष्टि रखते हुए श्रीभगवान् की अर्चाविग्रह-प्रतिमाओं का पूजन करना चाहिये। किसी भी प्राणी से रागद्वेष न कर सबों का दान-मान से पूजन करना चाहिये, क्योंकि भगवान् श्रीहरि सब प्राणियों में

जीव रूप से अवस्थित हैं–ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति। (श्रीमद्भा. ३/२९/३४)

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य
देवीमहेशहरिधामसु तेषु तेषु ।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१५॥

अनुवाद– जिन्होंने गोलोक नामक अपने सर्वोपरि धाम में रहते हुए उसके नीचे स्थित क्रमशः वैकुण्ठ लोक, शिवलोक और देवीलोक नामक विभिन्न धामों की प्रकृष्ट सत्ता अधिकारियों को प्रदान की है, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ॥१५॥

विशेष– देवी और महेश का स्वरूप अग्रिम श्लोकद्वय में निरूपण करते हैं–

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि विभर्ति दुर्गा ।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१६॥

अनुवाद– जिनकी विश्व-सृष्टि-स्थिति-विनष्टि की साधना शक्ति दुर्गा छाया की भाँति भुवनों का पालन करती हैं, जिनकी इच्छा के अनुसार वे चेष्टाएँ करती हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ॥१६॥

विशेष– माँ दुर्गा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण का ही रूप हैं–यः कृष्णः सैव दुर्गा या दुर्गा कृष्ण एव सः। (गौतमीय कल्प) ये माँ दुर्गा कृष्ण-मंत्र की अधिष्ठातृ देवता हैं। जो विद्वान् महानुभाव शास्त्रीय-विधि अनुसार कृष्ण-मन्त्र जपते हैं, वे ऋष्यादि

न्यास करते समय कृष्ण-मन्त्र की अधिष्ठातृ देवता-प्रत्यह दुर्गा का स्मरण करके हृदय में न्यास करते हैं।

क्षीरं यथा दधिविकारविशेषयोगात्
संजायते न हि ततः पृथगस्ति हेतोः ।
यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्याद्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१७॥

अनुवाद– जिस प्रकार दूध खटाई के मिलन से दही बन जाता है, किन्तु वह खटाई से अलग नहीं होता है, उसी प्रकार जो संहार-कार्य के निमित्त शम्भु-रूपता को प्राप्त किये हुए हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।१७।।

विशेष– श्रीमद्भागवत के अनुसार शम्भु उच्चकोटि के परम वैष्णव हैं और श्रीभगवान् ने उनको अपनी विभूतियों में गिन लिया है। **'वैष्णवानां यथा शम्भुः'** (श्रीमद्भा.१२/१३/१६) रुद्राणां शंकरश्चास्मि (श्रीमद्गी. १०/२३) शं=कल्याणं करोतीति शंकरः। शम्भु के रूप से भी वही है।

उभयोः प्रकृतिस्त्वेका प्रत्ययभेदेन भिन्नवद्भाति ।
कल्पयति कश्चिन्मूढो हरिहरभेदं विनाशार्थम् ॥
'विना शास्त्रं वा ॥'

'हृ' धातु के साथ 'इन्' प्रत्यय लगाने से 'हरि' और 'हृ' धातु के साथ 'णक्' प्रत्यय लगाने से 'हर' शब्द सिद्ध होता है। इन दोनों शब्दों की प्रकृति एक है अर्थात् धातु एक है, केवल प्रत्यय-भेद से भिन्न लगते हैं। मूर्ख मनुष्य हरि और हर में भेद की कल्पना विनाश के लिए करता है। जो मनुष्य आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द को सभी प्राणियों में और ब्रह्मा,

विष्णु और शिव इन देवताओं में देखता है, वह शीघ्र ही शान्ति प्राप्त करता है।

दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य
दीपायते विवृतहेतुसमानधर्मा ।
यस्तादृगेव हि विष्णुतया विभाति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१८॥

अनुवाद– जिस प्रकार दीपक की लौ सब ओर फैलकर अपने फैलाव से दीपक के समान गुण-विशिष्ट होकर सारे कमरे को आलोकित करती है, उसी प्रकार जो विष्णु (व्यापक) रूप से प्रकाशित हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ॥१८॥

विशेष– आदित्यानामहं विष्णुः (श्रीमद्गी. १०/२१) द्वादश आदित्यों का नाम–धाता, मित्र, अर्यमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु।

यः कारणार्णवजले भजति स्म योग-
निद्रामनन्तजगदण्डसरोमकूपः ।
आधारशक्तिमवलम्ब्य परां स्वमूर्तिं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१९॥

अनुवाद- जो महाप्रलय-कालिक प्रलय-सलिल के मध्य में अपनी आधार शक्ति अनन्तशेष नामक परामूर्ति का अवलम्बनकर अपने रोम-कूपों में अखिल-विश्व-ब्रह्माण्डों को सूक्ष्म रूप से रखकर (शेषशय्या पर) योग-निद्रा में शयन करते हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ॥१९॥

विशेष– श्रीमद्भागवत (४/९/१४) में भी ध्रुव जी श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं–कल्प का अन्त होने पर शेषजी के प्यारे सखा आत्मद्रष्टा आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द चराचर समस्त विश्व को अपने उदर (पेट) में समेटकर शेषजी के साथ उन्हीं की गोद मे शयन करते हैं। हे प्रभो ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

यस्यैकनिःश्वसितकालमथावलम्ब्य
जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः ।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२०॥

अनुवाद– जिस महाविष्णु के एक निःश्वास काल को अवलम्बन कर असंख्य ब्रह्माण्डों के स्वामिवृन्द जीवित रहते हैं, वह महाविष्णु भी जिनके कलाविशेष है, मैं उन आदिपुरुषभगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।२०।।

विशेष– उपर्युक्त वचनों से यह सुस्पष्ट प्रमाणित हो गया कि भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वाधार, सर्वरूप, सर्वाश्रय सर्वनियन्ता हैं और सबकी परमगति हैं। श्रुति भी कहती है–पुरुषान्नं परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः (कठोपनिषद् १/३/११) इसलिये सभी प्राणियों को चाहिये कि वे आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द की ही शरण में जायँ।

भास्वान् यथाश्मसकलेषु निजेषु तेजः
स्वीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र ।
ब्रह्मा य एष जगदण्डविधानकर्ता
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२१॥

अनुवाद– जिस प्रकार सूर्य अपनी सभी सूर्यकान्त मणियों में स्वकीय कुछ तेज प्रकट करता है, उसी प्रकार यह ब्रह्मा जिनसे जगत्सृष्टि विषयिणी ज्ञानशक्ति प्राप्त करके परिदृश्यमान् नाम-रूप संसार की रचना करता है, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।२१।।

विशेष– 'धा' धातु के साथ 'वि' उपसर्ग लगाने से धातु (क्रिया) का अर्थ 'करना' होता है। यथा–**सहसा विदधीत न क्रियाम्।** एक संस्कृत पद्य में कहा गया है–

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहार-संहार-विहार-परिहारवत् ।।

सर्गारम्भ में ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् से कहा–हे भगवन्! मुझे सृष्टि का ज्ञान नहीं है। कृपया आप उसका उपदेश प्रदान करें। तब आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द ने ब्रह्माजी को चतुः श्लोकी श्रीमद्भागवत का उपदेश किया और कहा कि इसके चिन्तन-मनन से तुम्हें सृष्टि का पूर्ण ज्ञान हो जायेगा।



चतु:श्लोकी श्रीमद्भागवत

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत्सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद् विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्व जिज्ञासुनाऽऽत्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥

(श्रीमद्भा. २/९/३२-३५)

इस प्रकार चतु:श्लोकी श्रीमद्भागवत-निर्माता आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द ब्रह्मा को (माया, जिज्ञास्य=परब्रह्म और जिज्ञासु=जीव) तत्त्व-त्रय का उपदेश करके अन्तर्धान हो गये।

यत्पादपल्लवयुगं विनिधाय कुम्भ-
द्वन्द्वे प्रणामसमये स गणाधिराजः ।
विघ्नान् विहन्तुमलमस्य जगत्त्रयस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२२॥

अनुवाद– तीनों लोकों में विघ्नों को हरण करने वाले समर्थ श्रीगणेशजी जिन श्रीयुगल किशोर के पादपल्लवों को अपने दोनों स्कन्धों पर धारण करते हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ॥२२॥

विशेष– **'अलम् शक्तौ च निर्दिष्टम्'** इति विश्वः। अब इस श्लोक में जगदुत्पत्त्यादि का वर्णन करते हैं–

अग्निर्मही गगनमम्बुमरुद् दिशश्च
कालस्तथात्ममनसीति जगत्त्रयाणि ।
यस्माद् भवन्ति विभवन्ति विशन्ति यं च
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२३॥

अनुवाद– अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, दिशाएँ, काल, आत्मा, मन और तीनों लोक जिनसे उत्पन्न होते हैं, जिनमें स्थित रहते हैं और जिनमें प्रलय-काल के समय प्रवेश करते हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ॥२३॥

विशेष– सम्पूर्ण विश्व को श्रीभगवद्रूप में देखते हुए आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का मन, वाणी और शरीर से भजन करना चाहिये। श्रीभगवान् कहते हैं–हे कुन्तीपुत्र ! केवल एक मुझे प्राप्त कर लेने पर फिर पुनर्जन्म नहीं होता है। (श्रीमद्गी. ८/१६) इसलिये परम पुरुषार्थ के साधनरूप दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करना चाहिये।

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणां
राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः ।
यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२४॥

अनुवाद– जो सारे संसार के नेत्ररूप सूर्य हैं, जो समस्त ग्रहों के शासक हैं, जिनकी आज्ञा से अतितेजस्वी देवगण सम्पूरित कालचक्र के समान भ्रमण करते हैं अथवा जिनके कालचक्ररूप सर्वतः परिपूर्ण सुदर्शनचक्र से भयभीत होकर

देववृन्द नथे बैल के समान जिनकी आज्ञा से जगत् में अपने-अपने व्यापार में प्रवृत्त हो रहे हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।२४।।

धर्मोऽथ पापनिचयः श्रुतयस्तपांसि
ब्रह्मादिकीटपतगावधयश्च जीवाः ।
यद्दत्तमात्रविभवप्रकटप्रभावा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।२५।।

अनुवाद– धर्म-धर्मात्मा, पापसमूह-अधम जन्मवाले चाण्डाल प्रभृति, श्रुति-मूर्तिमान् वेद और ब्रह्मा से लेकर कीट-पतंग पर्यन्त समस्त जीव जिनके द्वारा प्रदत्त धन-सम्पत्ति, महती वाक् शक्तियों से पालित होते हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।२५।।

यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म-
बन्धानुरूपफलभाजनमातनोति ।
कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजां
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।२६।।

अनुवाद– जो एक इन्द्रगोप-जैसे क्षुद्र कीड़े से लेकर देवराज इन्द्र-पर्यन्त समस्त जीवों को अपने-अपने कर्मफलों के अनुरूप फल-भोग कराते हैं, किन्तु जो ज्ञानविज्ञान-सम्पन्न भक्तिमान् भक्तों के समस्त कर्मों को जड़ों से जला देते हैं, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ।।२६।।

विशेष–श्रीभगवान् मुझ प्रपन्न पर कृपा करेंगे, यह आशा अपने जीवन में प्रतिष्ठित करनी चाहिये। ब्रह्माजी श्रीभगवान् से कहते हैं–

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुंजान एवात्मकृतं विपाकम् ।

हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥
(श्रीमद्भा. १०/१४/८)

'हे श्यामसुन्दर ! जो यह प्रतीक्षा करता है कि आप कब मुझ पर अनुकम्पा-कृपा करेंगे और इस प्रतीक्षा के साथ अपने कर्मों का फल भोगता हुआ, मन, वाणी और शरीर से आपको नमन करता हुआ आपका भजन करता है, वह मुक्ति का हिस्सेदार हो जाता है।

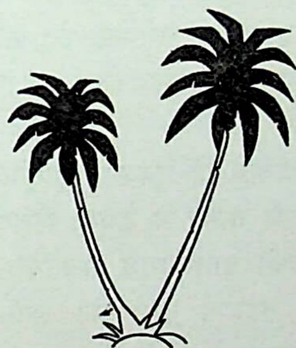
यं कामक्रोधसहजप्रणयादिभीति-
वात्सल्यमोहगुरुगौरवसेव्यभावैः ।
सञ्चिन्त्य तस्य सदृशीं तनुमापुरेते
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२७॥

अनुवाद– काम, क्रोध, सहज (पारिवारिक सम्बन्ध) प्रणय, (प्रेम) भय, वात्सल्य-मोह, श्रद्धा-भक्ति तथा सेवा-भाव से जिनका चिन्तन करके साधक जिनके स्वरूप को प्राप्त हो गये, मैं उन आदिपुरुष भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ॥२७॥

विशेष– गोपियों ने कामवासना से, कंस ने भय से, शिशुपाल, दन्तवक्र इत्यादि राजाओं ने द्वेष से, यदुवंशियों ने पारिवारिक सम्बन्ध से, पाण्डवों ने स्नेह से, नन्दादि ने वात्सल्य-भाव से और हम ऋषि-महर्षि, मुनि-महामुनियों ने सेव्य-सेवक, भक्ति-भाव से अपना मन भगवान् श्रीहरि में स्थित किया। व्याकुल होकर भक्तिगद्गद हृदय से उपर्युक्त ब्रह्मकृत श्रीभगवत्स्तोत्र से प्रतिदिन सायंकालीन स्तुति करनी चाहिये। तत्पश्चात्–

राधे कृष्ण राधे कृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे ।
राधे श्याम राधे श्याम श्याम श्याम राधे राधे ॥

इन श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगल-नामों का संकीर्तन करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष ऐसा निश्चय करके युगल नामों का निरन्तर कीर्तन करें। जो लोग इहलोक या परलोक की किसी स्वेच्छा विषयीभूत काम्य वस्तु चाहते हैं या इसके विपरीत संसार में दुःख का अनुभव करके उससे जो निर्विष्ण हो गये हैं और अभय परमपद को प्राप्त करना चाहते हैं, उन मुमुक्षु साधकों के लिए युगलनाम-संकीर्तन बतलाया गया है।



राधोपनिषद्

ऋग्वेद के उपनिषद्-भाग में एक राधोपनिषद् है। वह इस प्रकार है-

अथोर्ध्वरेतस ऋषयः सनकाद्या भगवन्तं हिरण्यगर्भ-मुपासित्वोचुः - देव ! कः परमो देवः का वा तच्छक्तयस्तासु च का वरीयसी भवतीति सृष्टिहेतुभूता च केति।

अनुवाद– एक समय नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनकादि महर्षियों ने भगवान् हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) की उपासना करके उनसे पूछा–हे देव ! कौन परम देव हैं और उनकी कौन-कौन सी शक्तियाँ हैं तथा शक्तियों में से सृष्टि की वरीयसी-हेतु कौन सी शक्ति है? हे भगवन् ! कृपाकर आप यह तत्त्व हम चारों भाइयों को बतलावें।

उ. नि. स होवाच–हे **पुत्रकाः शृणुतेदं ह वाव गुह्याद् गुह्यतरमप्रकाश्यं यस्मै कस्मै न देयम्। स्निग्धाय ब्रह्मवादिने गुरुभक्ताय देयमन्यथा दातुर्महदघं भवतीति।**

अनुवाद– ब्रह्माजी बोले–बेटे सुनो ! यह गुह्य से गुह्यतर है और अप्रकाश्य है अर्थात् इस गोपनीय युग्म-तत्त्व को तुम लोग किसी से बताना नहीं, इसको गुप्त रखना, यानी किसी ऐरे-गैरे-गाँव के गँवार को मत दे डालना। हाँ, जो सहृदय-स्नेही-ब्रह्मवादी-गुरुभक्त हों, उन्हें अवश्य देना। इनके अतिरिक्त और दूसरे किसी अपात्र को देने से दाता को महापाप लगेगा।

विशेष– श्रीश्रीमज्जगद्गुरु भगवान् निम्बार्काचार्य जी ने वेदान्तकामधेनु दशश्लोकी नामक ग्रंथ में कहा है–'**सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं श्रीनारदायाखिलतत्त्वसाक्षिणे।**' एक समय ब्रह्माजी के मानस पुत्र श्रीसनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ने निखिल तत्त्वद्रष्टा श्रीमन्नारद जी को इस युगलोपासना का उपदेश किया था। आचार्यचरणों ने क्या कहा है, सम्पूर्ण जानकारी के लिए वेदान्तरत्नमंजूषा और सिद्धान्तरत्नाजंली पुस्तकद्वय पढ़िये।

उ. नि. कृष्णो ह वै हरिः परमो देवः षड्विधैश्वर्यपरिपूर्णो भगवान् गोपीगोपसेव्यो वृन्दाराधितो वृन्दावनाधिनाथः स एक एवेश्वरो तस्य ह वै द्वे तनुर्पारायणोऽखिलब्रह्माण्डपतिरेकोंऽशः प्रकृतेः प्राचीन एवं हि तस्य शक्तयस्त्वनेकधा ।

अनुवाद– गोप और गोपियों द्वारा सेव्य, वृन्दा (तुलसी) देवी से आधारित और वृन्दावन के अधीश्वर षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न भगवान् हरि श्रीकृष्ण हैं। ये श्रीकृष्ण ही एकमात्र ईश्वर हैं। जो सब प्राणियों के हृदय में स्थित हैं। उनके दो शरीर हैं। इन्हीं श्रीकृष्ण के एक अंश श्रीमन्नारायण हैं, जो अखिल ब्रह्माण्डों के अधीश्वर हैं। प्रकृति से प्राचीन हैं और उनकी अनेकधा शक्तियाँ हैं।

विशेष– प्रलय में कालद्वारा जड़-प्रकृति का नाश हो जाने पर एक श्रीभगवान् ही शेष रहते हैं, इसलिए श्रीकृष्ण को–'प्रकृतेः प्राचीनः कहा है। (श्रीमद्भागवत १०/३/२५) प्रकृति दो प्रकार की है–एक अपरा दूसरी परा प्रकृति। जैसे–हे अर्जुन! पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, तेज, मन, अहंकार और बुद्धि यह मेरी अष्टविध भेदयुक्त अपरा प्रकृति है। इसे जड़-अपरा-निकृष्ट-प्रकृति कहते हैं। (न परा अपरा निकृष्टा इति यावत्) इससे भिन्न मेरी एक और परा प्रकृति है उसको जीव कहते हैं, जिससे यह

जगत् धारण किया जाता है। (श्रीमद्गी. ७/४-५) (परा मा शक्तिर्यस्यासौ परमः 'पराऽस्य शक्तिः इति श्रुतेः) दीव्यति-क्रीडति राधया सह देवः कृष्णः। हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयाऽपि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः। जिनकी परा-शक्ति (राधा) है, वे परम शब्द से कहे जाते हैं। इसलिये परम देव श्रीकृष्ण हैं। महाराज बलि की धर्मपत्नी विन्ध्यावली ने हाथ जोड़कर कहा-हे भगवन् ! आपने यह विश्व अपनी क्रीडा के लिए ही बनाया है। इसे जो लोग अपना समझ बैठते हैं, उनकी बुद्धिपर मुझे तरस आता है। (श्रीमद्भागवत ८/२२/२०) ब्रह्माजी श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं-

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥

(श्रीमद्भागवतम् १०/१४/२१)

दूषित चित्तवालों से भी स्मरण किया हरिनाम पापों को हरता है। जैसे बिना इच्छा से स्पर्श की हुई अग्नि जलाये बगैर नहीं रहती है, वैसे ही 'हरि' ये दो अक्षर पाप-संघ को जला देते हैं। भगवच्छब्द का अर्थ शास्त्रकारों ने यह किया है कि जिसमें छः भग हों, वही भगवान् कहला सकता है। वे छः भग ये हैं-

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः ।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशस श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरिणा ॥

(विष्णुपुराण ६/५/७८/७९)

अर्थात् हेय गुणों के बिना ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज ये छहों जिसमें परिपूर्ण हों, वही 'भगवत' शब्द वाच्य है। समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, समग्र यश, समग्र श्री, समग्र ज्ञान, और समग्र वैराग्य ये भी छः भग शब्द से कहे जाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ऐश्वर्यादि नित्य और अप्रतिहतरूप से जिसमें रहें वह 'भगवान्' कहलाता है। इसको और भी स्पष्ट कर दिया गया है–

उत्पत्तिं च विनाशं च भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥

(विष्णुपुराण ६/५/७८)

अर्थात् जो समस्त प्राणियों की उत्पत्ति को, विनाश को, उनकी स्थिति और प्रवृत्ति को तथा विद्या और अविद्या को जानता है, उसे 'भगवान्' कहते हैं। इसलिये श्रीमद्भागवतकार ने कहा है–

कृष्णास्तु भगवान् स्वयम्। (श्रीमद्भा. ३/३/२८)

राधाजी के पक्ष में ऊपर से भगवती शब्द अनुवर्तन कर लेना चाहिये।

उ. नि. आह्लादिनी सन्धिनी ज्ञानेच्छा क्रियाद्या बहुविद्याः शक्तयः[१]। तास्वाह्लादिनी वरीयसी परमान्तरंगभूता राधा। कृष्णेनाराध्यते इति राधा कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका। गान्धर्वेति व्यपदिश्यत इति अस्या एव कायव्यूहरूपा गोप्यो महिष्य लक्ष्मीश्चेति।

अनुवाद– भगवान् श्रीकृष्ण की आह्लादिनी, सन्धिनी, ज्ञान, इच्छा और क्रिया इत्यादि बहुत सी शक्तियाँ हैं। उनमें

(१) विमलोत्त्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा ततः परम्। प्रह्वी सत्यां तथेशनाऽनुग्रहा नव शक्तयः॥

आह्लादिनी शक्ति वरीयसी (सर्वश्रेष्ठ एवं वरिष्ठ) है। यही परम अंतरंगरूपा राधा हैं। भगवान् कृष्ण इन्हीं राधा की आराधना करते हैं और राधा सदा कृष्ण की आराधना करती हैं। इसलिये राधा कहलाती हैं । राधा को गान्धर्वा भी कहते हैं। इन्हीं राधा के शरीर के लोमों से ही व्रज की गोपियाँ, कृष्ण की महिषियाँ, लक्ष्मीजी प्रकट हुई हैं।

विशेष– इसलिये भगवान् कृष्ण की सर्वप्रधाना परमप्रेयसी आह्लादिनी परा शक्ति भगवती राधाजी की कृपादृष्टिवृष्टि के बिना कृष्ण को कोई भी जान ही नहीं सकता। आईए, हम सब भगवत्प्रपन्न-रसिक-भावुक-जन हाथ जोड़कर भक्ति-गद्गद-हृदय से जगन्माता राधाजी की स्तुति करें–

भजामि राधामरविन्दनेत्रां
स्मरामि राधां मधुरस्मितास्याम् ।
वदामि राधां करुणाभरार्द्रां
ततो ममान्यास्ति गतिर्न कापि ।।१।।
रे चित्त चिन्तय चिरं वृषभानुपुत्रीं
नो विस्मर क्षणमपीति ममाभिलाषः ।
राधेति नाम जप भो रसने ममांग
राधावने वस तदंघ्रिरजोऽभिलिप्तम् ।।२।।

अनुवाद– मैं कमलनयनी भगवती देवी राधाजी का भजन करता हूँ। उनके सुमधुर कृपाकटाक्ष मुस्कानयुक्त मुखकमल का स्मरण करता हूँ। करुणाभरी आर्द्रहृदया राधाजी के मंगलमय नामों का उच्चारण करता हूँ। ऐसी राधाजी के सिवाय मेरी कोई गति नहीं है। अरे मेरे चित्त ! तू हमेशा वृषभानुनन्दिनी, महारानी राधारानी का ही चिन्तन-मनन किया कर, उन्हें एक क्षण के लिए भी कभी न भूल, यह मेरी अभिलाषा है। हे रसने ! तू

'राधा' इस सरल-सरस-सुभग-मधुमय नाम का निरन्तर जाप करती रह तथा हे मेरे सर्वांग तू व्रजेश्वरी राधारानी की त्रिभुवनपावन चरणधूलि से लिप्त होकर इस राधा-वन (श्रीधाम वृन्दावन) में सदा वास किया कर।

राधा राधा नाम जो सपने में हू लेत ।
ताकूँ मोहन साँवरो झट अपनो कर लेत ॥
राधा राधा कहत ही सब बाधा मिटि जाय ।
कोटि जनम की आपदा नाम लिए ते जाय ॥

उ. नि.–

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धि-
र्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत् ।
देहो यथा छायया शोभमानः
शृण्वन् पठन् याति तद्धाम शुद्धम् ॥

अनुवाद– ये राधा और कृष्ण रस-सागर हैं। ये एक ही हैं, विहार करने के लिए दो रूप बने हुए हैं। जैसे कान्ति (आभा) से शरीर शोभित होता है, वैसे ही राधाजी से कृष्ण शोभायमान होते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन श्रद्धा-भक्ति से इनका चरित्र-श्रवण करता है और पाठ करता है, वह निश्चय ही इनके शुद्ध परम धाम को प्राप्त करता है।

विशेष– दूसरी श्रुति भी इनको रसरूप बतलाती है–

'रसो वै सः' (तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मानन्दवल्ली ७)

उपर्युक्त उपनिषद् का अर्थ श्रीमद्भागवत में (११/५/३२) विस्तार से वर्णन मिलता है–

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम् ।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥

इस श्लोक का अर्थ मंगलाचरण मे देखें। उल्लिखित वेद-मंत्र के अक्षरशः अनुवाद व्रजभाषा में निम्नांकित पद्य कितने सुन्दर हैं–

दोहा : सदा सर्वदा युगल इक, एक युगल तन धाम ।
आनन्द औ आह्लाद मिलि, बिलसत हैं द्वै नाम ॥

पद : एक स्वरूप सदा द्वै नाम ।
आनन्द की अह्लादिनि श्यामा, अह्लादिनि के आनन्द श्याम ॥
सदा सर्वदा युगल इक, एक युगल तन विलसत धाम ।
श्रीहरिप्रिया निरन्तर नितप्रति कामरूप अद्‌भुत अभिराम ॥

(–श्रीमहावाणीजी)

निर्माय सह कृष्णेन श्रीराधाऽर्चां हरिप्रियाम् ।
साहित्येनैव सम्पूज्य नित्यमेति परां गतिम् ॥
राधया सहितं कृष्णं यः पूजयति नित्यशः ।
भवेद् भक्तिर्भगवति मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥

–औदुम्बर-संहिता

जो भगवान् श्रीकृष्ण के साथ उनकी प्रिया भगवती श्रीराधा की प्रतिमा (अर्चाविग्रह) बनवाकर प्रतिदिन श्रद्धा-भक्ति से पूजन करता है, वह परा-गति को प्राप्त होता है। जो श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण की नित्य सेवा-पूजा करता है, उसकी भगवान् में भक्ति होती है और मुक्ति उसके हाथ में रहती है। जो श्रीराधाजी की दासता-त्याग करके श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए प्रयास करता है, वह पूर्णिमा के बिना ही पूर्णचन्द्र की कान्ति को देखना चाहता है।

उ. नि.–राधा वै हरेः सर्वेश्वरी सर्वविद्या सनातनी कृष्णप्राणाधिदेवी चेति विविक्ते वेदाः स्तुवन्ति यस्याः ब्रह्मभागाः वदन्ति महिमाऽस्याः स्वायुर्मानेनापि कालेन वक्तुं न चोत्सहे। सैव यस्य प्रसीदति तस्य करतलावकलितं परमं धामेति। एतामविज्ञाय यः कृष्णमाराधयितुमिच्छति स मूढतमो मूढतमश्चेति अथैतानि नामानि गायन्ति श्रुतयः –

राधा रासेश्वरी रम्या कृष्णमन्त्राधिदेवता ।
सर्वाद्या सर्ववन्द्या च वृन्दावनविहारिणी ॥
वृन्दाराध्या रमाऽशेषगोपीमण्डलपूजिता ।
सत्या सत्यपरा सत्यभामा श्रीकृष्णवल्लभा ॥
वृषभानुसुता गोपी मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
गान्धर्वा राधिका रम्या रुक्मिणी परमेश्वरी ॥
परात्परतरा पूर्णा पूर्णचन्द्रनिभानना ।
भुक्तिभुक्तिप्रदा नित्यं भवव्याधिविनाशिनी ॥

इत्येतानि नामानि यः पठेत् स जीवन्मुक्तो भवति।

अनुवाद– ये श्रीराधाजी भगवान् श्रीहरि की सर्वेश्वरी, सम्पूर्ण सनातनी विद्या और उनके प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं। इनकी स्वरूप-गुण-माहात्म्य-महिमा का वेद एकान्त में स्तुति करते हैं। द्विपरार्द्ध कालस्थायी पद में अधिष्ठित सात वित्ते का शरीर वाला मैं भी भगवती श्रीराधाजी की महिमा को नहीं कह सकता। वे जिस पर प्रसन्न होती हैं, परम चिन्मय धाम उसके हाथ में आ जाता है। जो श्रीराधाजी की अवज्ञा करके श्रीकृष्ण की आराधना करना चाहता है, वह निश्चय ही महामूर्ख है। श्रुतियाँ इनके इन नामों का गान करती हैं। नामावली–

१. ॐ राधायै नमः २. ॐ रासेश्वर्य्यै नमः
३. ॐ रम्यायै नमः ४. ॐ कृष्णमन्त्राधिदेवतायै नमः

५. ॐ सर्वाद्यायै नमः ६. ॐ सर्ववन्द्यायै नमः
७. ॐ वृन्दावनविहारिण्यै नमः ८. ॐ वृन्दाराध्यायै नमः
९. ॐ रमायै नमः १०. ॐ अशेषगोपीमण्डलपूजितायै नमः
११. ॐ सत्यायै नमः १२. ॐ सत्यपरायै नमः
१३. ॐ सत्यभामायै नमः १४. ॐ श्रीकृष्णवल्लभायै नमः
१५. ॐ वृषभानुसुतायै नमः १६. ॐ गोप्यै नमः
१७. ॐ मूलप्रकृत्यै नमः १८. ॐ ईश्वर्य्यै नमः
१९. ॐ गान्धर्वायै नमः २०. ॐ राधिकायै नमः
२१. ॐ रम्यायै नमः २२. ॐ रुक्मिण्यै नमः
२३. ॐ परमेश्वर्य्यै नमः २४. ॐ परात्परतरायै नमः
२५. ॐ पूर्णायै नमः २६. ॐ पूर्णचन्द्रनिभाननायै नमः
२७. ॐ भुक्तिमुक्तिप्रदायै नमः २८. ॐ भवव्याधिविनाशिन्यै नमः

विशेष—जो इन अटठाईस नामों का जाप करता है, वह जन्म-जरा-मरण-रूप संसार से छूट जाता है।

१. मूलप्रकृति शब्द के संस्कृतव्याकरण में चतुर्थी विभक्ति में दो रूप बनते हैं। यथा—**मूलप्रकृत्यै, मूलप्रकृतये।** श्रीमद्‌भागवत (८/३/२३) के गजेन्द्र-स्तोत्र में गजेन्द्र ने इस प्रकार स्तुति की है—मूलप्रकृतये नमः। इससे सिद्ध हो गया कि श्रीमद्भागवत मे श्रीराधाजी हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

उ. नि.—**इत्याह हिरण्यगर्भो भगवानिति। सन्धिनी तु धाम-भूषणशय्यासनादिमित्रभृत्यादिरूपेण परिणता। मृत्युलोकावतरणकाले मातृपितृरूपेण चासीदित्यनेकावतारकारणा। ज्ञानशक्तिस्तु ज्ञेत्रज्ञ-शक्तिरिति। इच्छान्तर्भूता माया। सत्त्वरजस्तमोमयी बहिरंगा जगत्कारणभूता। सैवाविद्यारूपेण जीवबन्धनभूता। क्रियाशक्तिस्तु लीलाशक्तिरिति।**

अनुवाद– इस प्रकार हिरण्यगर्भ भगवान् ने श्रीराधाजी के अट्ठाईस नामों का वर्णन किया। अब श्रीकृष्ण की सन्धिनी-शक्ति का वर्णन करते हैं, ध्यान पूर्वक सुनें। सन्धिनीशक्ति–धाम, भूषण, शय्या, आसनादि तथा मित्र और दास-किंकर-भृत्यादि-रूप में परिणत होती है। इस धरा-धाम पर अवतार लेने के समय माता-पिता के रूप में परिणत होती है। यही अनेक अवतारों का कारण है। ज्ञान-शक्ति को ही क्षेत्रज्ञ-शक्ति कहते हैं और इच्छा-शक्ति के अन्तर्भूत माया-शक्ति है। सत्त्व, रज और तम ये बहिरंग-शक्तियाँ हैं। यही त्रिगुणात्मिका अविद्या अज्ञानरूप से जीव का बन्धन है। क्रिया-शक्ति को ही लीला-शक्ति कहते हैं।

विशेष–सत्त्वमूर्त्ति भगवान् की मूलतः चौबीस संख्या अवतार ही मानी गयी है। अवतार शब्द का अर्थ है–अवतरणम् अवतारः, अव तृ धञ्। अर्थात् परब्रह्म का उतरना। व्यापी गोलोक से अथवा वैकुण्ठ से भगवान् श्रीहरि का जगत्प्रपंच में प्रकट हो जाना, यह अवतार शब्द का अर्थ है। अथवा यों समझना चाहिये–जो अपनी इच्छा से अथवा भक्तों की इच्छा से धर्म की स्थापना और अधर्म की निवृत्ति एवं निज भक्तों की अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लिए वराहादि अनेक प्रकार के स्वरूपों में समय-समय पर प्रकट होते हैं, वे अवतार कहलाते हैं। श्रीभगवद्-अवतारों की विशेष जानकारी के लिए जिज्ञासु जन मदीय शोध-प्रबन्ध (शीर्षक "श्रीमद्भागवते निम्बार्क वेदान्तस्य समन्वयः हिन्दी भाषानुवाद सहितः") का अध्ययन करें।



अथ फलश्रुतिः

य इमामुपनिषदमधीते सोऽव्रती व्रती भवति, स वायुपूतो भवति, स सर्वपूतो भवति, स राधाकृष्णप्रियो भवति, स यावच्चक्षुः पातं करोति पङ्कती: पुनाति।।

।। इति ऋग्वेदे ब्रह्मभागे परमरहस्ये राधोपनिषद्।।

अनुवाद–जो इस उपनिषद् का अध्ययन करता है, वह अव्रती व्रती हो जाता है। वह वायु-पूत और सर्वपूत हो जाता है। भगवान् श्री श्री राधाकृष्ण युगलसरकार का प्रिय हो जाता है और वह जहाँ तक दृष्टिपात करता है, वहाँ तक सबको पवित्र कर देता है।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यत्यागमूर्तिस्वामिधनञ्जय-
दासजीकाठियाबाबा-तर्क-तर्क-व्याकरणतीर्थ-
पादपद्मान्तेवासी योगिराजस्वामिराधा-
विहारिदासजीकाठियाबाबा-
चरणारविन्दचञ्चरीक-
डॉ. स्वामी द्वारकादासजीकाठियाबाबा
संगृहीता

श्रीपुरुषोत्तमोपासना

श्रीश्रीमज्जगद्गुरुभगवन्निम्बार्काचार्यविरचिता

वेदान्तकामधेनुः

(दशश्लोकी)

१. जीवात्मस्वरूपम् (चित्स्वरूपम्) –

ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम् ।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः ॥१॥

२. अचित्स्वरूपम् (जगत्स्वरूपम्) –

अनादिमायापरियुक्तरूपं त्वेनं विदुर्वै भगवत्प्रसादात् ।
मुक्तं च बद्धं किल बद्धमुक्तं प्रभेदबाहुल्यमथापि बोध्यम् ॥२॥
अप्राकृतं प्राकृतरूपकं च कालस्वरूपं तदचेतनं मतम् ।
मायाप्रधानादिपदप्रवाच्यं शुक्लादिभेदाश्च समेऽपि तत्र ॥३॥

३. ब्रह्मस्वरूपम् (ईश्वरस्वरूपम्) –

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम् ।
व्यूहांगिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् ॥४॥
अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ॥५॥

४. गंगादिप्रवाहवत् क्षणाद्यपरिच्छेदेनोपासना परम्परा –

उपासनीयं नितरां जनैः सदा प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं श्रीनारदायाखिलतत्त्वसाक्षिणे ॥६॥

५. सिद्धान्तनिरूपणम् –

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं त्रिरूपताऽपि श्रुतिसूत्रसाधिता ॥७॥

६. शरणागतिः –

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात् संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहादचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात् ।।८।।

७. पराऽपरा भक्तिः –

कृपाऽस्य दैन्यादियुजि प्रजायते यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा ।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमा साधनरूपिकाऽपरा ।।९।।

८. अर्थपंचकविवेकः –

उपास्यरूपं तदुपासकस्य च कृपाफलं भक्तिरसस्ततः परम्।
विरोधिनो रूपमथैतदाप्तर्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पंचसाधुभिः ।।१०।।

उपर्युक्त श्रीभगवन्निम्बार्ककृत वेदान्तकामधेनु दशश्लोकी पर श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी ने **"वेदान्तरत्नमञ्जूषा"** नामक संस्कृत-विवृति लिखी है। वेदान्तरत्नमञ्जूषा के विषय-रहस्य- दार्शनिक-सिद्धान्तों को खोलने के लिए पण्डितप्रवर श्रीअमोलकराम शास्त्रीजी ने वेदान्तरत्नमञ्जूषा पर **"कुञ्जिका"** नामक सरल एवं सुबोध संस्कृत-टीका की रचना की है।

श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी ने भी वेदान्त-कामधेनु (दशश्लोकी) पर **"सिद्धान्तरत्नाञ्जलि"** नामक एक प्रांजल संस्कृत-भाष्य का प्रणयन किया है। श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी ने असाधारण-बुद्धि-शक्ति-प्रभाव से सिद्धान्तरत्नाञ्जलि में अनेक दार्शनिक-मतवादों का निरसकरण करते हुए वेदान्तशास्त्र की मीमांसा की है।

सिद्धान्तरत्नाञ्जलि-भाष्य की विषय-वस्तु-निरूपण-शैली अपूर्व दार्शनिकता एवं तार्किक-विचार-शक्ति-प्रसूता है। वस्तुतः तीनों (विवृति-टीका-भाष्य) असाधारण वैदुष्यपूर्ण, अपूर्व मार्मिक-दार्शनिक अन्तर्दृष्टि तथा वेदान्त-सिद्धान्तपरक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं, जो कि संस्कृत के विद्वान् महानुभावों और छात्रों के लिये

अत्यन्त उपादेय एवं संग्रहणीय हैं। अनुसंधान-(रिसर्च) कर्ताओं के लिए तो ये तीनों भाष्य आकर-ग्रन्थ-सहायक के रूप में अमूल्य निधि हैं।

लेखक की गुरुपरम्परा –

१. श्रीहंसभगवान्
२. श्रीसनकादिभगवान्
३. श्रीनारदभगवान्
४. श्रीनिम्बार्कभगवान्
५. श्रीश्रीनिवासाचार्यजी
६. श्रीविश्वाचार्यजी
७. श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी
८. श्रीविलासाचार्यजी
९. श्रीस्वरूपाचार्यजी
१०. श्रीमाधवाचार्यजी
११. श्रीबलभद्राचार्यजी
१२. श्रीपद्माचार्यजी
१३. श्रीश्यामाचार्यजी
१४. श्रीगोपालाचार्यजी
१५. श्रीकृपाचार्यजी
१६. श्रीदेवाचार्यजी
१७. श्रीसुन्दरभट्टजी
१८. श्रीपद्मनाभभट्टजी
१९. श्रीउपेन्द्रभट्टजी
२०. श्रीरामचन्द्र भट्टजी
२१. श्रीबामनभट्टजी
२२. श्रीकृष्णभट्टजी
२३. श्रीपद्माकरभट्टजी
२४. श्रीश्रवणभट्टजी
२५. श्रीभूरिभट्टजी
२६. श्रीमाधवभट्टजी
२७. श्रीश्यामभट्टजी
२८. श्रीगोपालभट्टजी
२९. श्रीबलभद्रभट्टजी
३०. श्रीगोपीनाथभट्टजी
३१. श्रीकेशवभट्टजी
३२. श्रीगांगलभट्टजी
३३. जगद्विजयीश्रीकेशवकाश्मीरी भट्टजी
३४. श्रीश्रीभट्टजी
३५. श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी
३६. श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी
३७. श्रीकर्णहरदेवाचार्यजी
३८. श्रीपरमानन्द देवाचार्यजी
३९. श्रीचतुरचिन्तामणिदेवाचार्यजी

४०. श्रीमोहनदेवाचार्यजी ४१. श्रीजगन्नाथ देवाचार्यजी
४२. श्रीमाखनदेवाचार्यजी ४३. श्रीहरिदेवाचार्यजी
४४. श्रीमथुरादेवाचार्यजी ४५. श्रीश्यामलदासजी
४६. श्रीहंसदासजी ४७. श्रीहरिदासजी
४८. श्रीमोहनदासजी ४९. श्रीनयनादासजी
५०. काष्ठकोपीन-प्रवर्तक-स्वामीइन्द्रदासजी काठियाबाबा
५१. स्वामी बजरंगदासजी काठियाबाबा
५२. स्वामी गोपालदासजी काठियाबाबा
५३. स्वामी देवदासजी काठियाबाबा
५४. परमेष्ठी गुरुदेव स्वामी रामदासजी काठियाबाबा
५५. परात्पर गुरुदेव स्वामी संतदासजी काठियाबाबा
५६. परमगुरुदेव स्वामी धनंजयदासजी काठियाबाबा
५७. सद्गुरुदेव स्वामी राधाबिहारीदासजी काठियाबाबा
५८. स्वामी द्वारकादासजी काठियाबाबा (रचयिता)



जगद्गुरु भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य-प्रणीत ग्रन्थ

१- वेदान्तपारिजात-सौरभ
२- वेदान्त-दशश्लोकी
३- मन्त्ररहस्य-षोडशी
४- प्रपन्न-कल्पवल्ली
५- श्रीराधाष्टकम्
६- श्रीप्रातः स्तव

इनके अतिरिक्त गीतावाक्यार्थ, सदाचार-प्रकाश, प्रपन्न-चिन्तामणि तथा उपनिषद्-भाष्य भी प्रणीत हैं, किन्तु अनुपलब्ध हैं। शेष सभी ग्रन्थ श्रीसर्वेश्वर-पुस्तकालय, श्रीजी मन्दिर, वृन्दावन, श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, सलेमाबाद (किशनगढ़) राज० तथा चौखम्बा-विद्या-भवन, वाराणसी आदि स्थानों पर उपलब्ध हैं।